"भारतीय ज्ञान परंपरा के विविध संदर्भ"

29 May 2024
Volume I
Special Issue 1
E-ISSN: 2454-2717

GACC JOURNAL

A Quarterly Journal

Covering Researches in all fields of Humanities, Languages, Social Services, Commerce and Management

NAAC Accreditated B+ Grade (2024)

AN OFFICIAL PUBLICATION OF SHRI ATAL BIHARI VAJPAYEE GOVERNMENT ARTS AND COMMERCE COLLEGE, INDORE

CHIEF PATRON :

Dr. Sudha Silawat
Additional Director
Dept. of Higher Education,
Indore Division, Indore

PATRON :

Dr. Prakash Garg,
Principal
SABV GACC, Indore (M.P.)

ADVISOR:

Dr. Venu Trivedi
Professor, Dept. of Geography ,
SABV GACC, Indore (M.P.)

EDITOR IN CHIEF:

Dr. Sangeeta Mehta,
Professor, Department of Sanskrit
SABV GACC, Indore (M.P.) email: sangeetamehta51@gmail.com

EDITOR:

1. Dr. Kavita Agrawal
   Professor, Dept. of Economics
   SABV GACC, Indore (M.P.) email: prokavita68@gmail.com
2. Dr. Suresh Chaturvedi
   Guest Facutly in Sanskrit Department email- suresh0107@gmail.com

MEMBERS OF EDITORIAL BOARD:

1. Dr. Amar Vatnani,
   Professor, Dept. of Commerce,
   SABV GACC, Indore (M.P.)
2. Dr. Tripat Kaur chawala,
   Professor, Dept. of Economics
   SABV GACC, Indore (M.P.)
3. Dr. D. K. Gupta,
   Administrative Officier
   Professor, Dept. of Commerce,
   SABV GACC, Indore (M.P.)

MAILING ADDRESS :

Shri Atal Bihari Vajpayee Government Arts & Commerce College
A.B. Road, Near Bhanwar Kuan Square, Indore (M.P.)
Postal Code: 452017
email: gaccjournal58@gmail.com
Website: www.gaccindore.org

- ✓ **Contributions from the researchers of Arts, Commerce, Science, & Management are invited for the forthcoming issues. Please send the papers to gaccjournal58@gmail.com. The publication is purely on first-come-first-serve basis, subject to the quality of the paper. The decision of the editorial board will be final and no correspondence in this regard whatsoever will be entertained.**

शुभकामना सन्देश

मुख्य संरक्षक

अत्यंत हर्ष का विषय है कि उच्च शिक्षा विभाग के निर्देशानुसार में श्री अटल बिहारी वाजपेई शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय इंदौर में आइक्यूएसी के अंतर्गत संस्कृत विभाग के द्वारा "भारतीय ज्ञान परंपरा के विविध संदर्भ विषय पर ऑनलाइन राष्ट्रीय वेबीनार का सफल आयोजन किया गया । इसके लिये महाविद्यालय बधाई का पात्र है।

मध्य प्रदेश शासन एवं उच्च शिक्षा विभाग का यह मिशन है कि भारतीय ज्ञान परंपरा को उसके पुरातन वैभव में पुनः स्थापित करना है, इसके लिए प्रदेश स्तर पर अनेक कार्यक्रम आयोजित हो रहे हैं ।

उसी तारतम्य में आयोजित इस वेबीनार में पूरे देश के अनेक विद्वान महानुभावों के द्वारा प्रस्तुत किए गए शोध पत्रों का प्रकाशन किया जाना अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगा। इस कार्य के लिए महाविद्यालय परिवार हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं।

डॉ सुधा सिलावट
अतिरिक्त संचालक
उच्च शिक्षा विभाग मध्य प्रदेश शासन, इंदौर
इंदौर संभाग, इंदौर

प्राचार्य की कलम से—

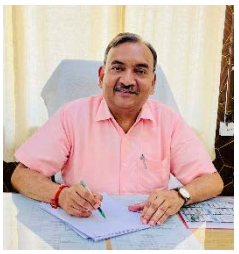

भारतीय ज्ञान परंपरा के विविध संदर्भ विषय पर उच्च शिक्षा विभाग मध्य प्रदेश शासन एवं संस्कृत विभाग द्वारा आइक्यूएसी के अंतर्गत आयोजित एकदिवसीय वेबीनार में प्राध्यापक गण, विद्वद्जन, जिज्ञासु छात्र एवं शोधार्थियों ने ज्ञानवर्धन के साथ आनंद का अनुभव किया।

विश्व गुरु भारत की पूर्व सिद्ध संस्कृति, संस्कृत और संस्कार की महनीयता को विश्व में पुनर्स्थापित करने हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के आलोक में मध्य प्रदेश शासन के संकल्प को संस्कृत विभाग एवं समस्त प्रतिभागियों ने अपने गहन अध्ययन और अनुभव के आधार पर प्रस्तुत प्रामाणिक शोध पत्रों के माध्यम से सिद्धि तक ले जाने का प्रशंसनीय कार्य किया है। इस विचार मंथन से उत्पन्न ज्ञानामृत देश और समाज के लिए उपयोगी होगा ऐसा मुझे विश्वास है।

वेबीनार में प्रस्तुत शोध पत्रों को श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय की जीएसीसी जर्नल ई- पत्रिका में प्रकाशन किया। इस महनीय कार्य के लिए मैं वेबीनार आयोजक, समिति संपादिका डॉ संगीता मेहता, संपादक मंडल एवं प्रकाशन कार्य में संलग्न सभी सदस्यों को अपनी ओर से बधाई एवं शुभकामनाएं देता हूं।

डॉ. प्रकाश गर्ग
प्राचार्य
श्री अटल बिहारी वाजपेयी
शास. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय,
इंदौर (म. प्र.)

शुभकामना सन्देश

प्रभारी आइ.क्यू.ए.सी

यह अत्यंत प्रसन्नता का विषय है कि श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय द्वारा दिनांक 29 मई 2024 को आयोजित "भारतीय ज्ञान परंपरा के विविध संदर्भ "विषय पर आयोजित वेबीनार में प्रस्तुत शोध पत्र एक शोध पत्रिका के रूप में प्रकाशित किये जा रहे हैं, यह निश्चित ही किसी शैक्षणिक संस्था के लिए अत्यंत गौरव का विषय होता है कि वह शोध पत्रों को एक शोध पत्रिका के माध्यम से प्रकाशित करे. यह न सिर्फ किसी उच्च शिक्षा संस्थान की अकादमिक गुणवत्ता को ही स्पष्ट नहीं करता वरन महाविद्यालय में एक अकादमिक वातावरण भी निर्मित करता है। इस शोध पत्रिका के प्रकाशन हेतु मैं हमारी संरक्षक अतिरिक्त संचालक महोदया डॉ सुधा सिलावट तथा महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ प्रकाश गर्ग एवं प्रशासनिक अधिकारी डॉ. डी के गुप्ता का अत्यंत आभार प्रकट करती हूं। इस शोध पत्रिका को आकार देने के लिए मैं वेबीनार की संयोजक डॉ संगीता मेहता तथा उनकी संपूर्ण टीम को भी शुभकामनाएं प्रेषित करना चाहती हूं।

मैं डॉक्टर वी.के. श्रीवास्तव पूर्व आचार्य-विभागाध्यक्ष,दीनदयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर का भी विशेष आभार व्यक्त करना चाहती हूं ,उन्होंने अत्यंत अल्प समयावधि में शोध आलेख के माध्यम से अपना अमूल्य योगदान प्रदान किया। इस प्रकार के शोध-परक कार्य से निश्चित रूप से महाविद्यालय की गुणवत्ता में वृद्धि होगी एवं महाविद्यालय के अन्य शिक्षकों को भी प्रेरणा प्राप्त होगी।

डॉ. वेणु त्रिवेदी

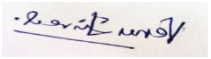

संयोजक आइक्यूएसी
प्राध्यापक एवं भूगोल
विभागाध्यक्ष, श्री अटल बिहारी
वाजपेयी शास. कला एवं वाणिज्य
महाविद्यालय,
इंदौर (म. प्र.)

संपादक की कलम से

भारतीय ज्ञान परंपरा के विविध सन्दर्भ

गायन्ति देवाःकिल गीतिकानि धन्यास्तुते भारत भूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥
विष्णु पुराण-2-3-24

देवता गीत गाते हैं कि स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष)की मार्गभूत भारत भूमि में जन्मे लोग देवताओं की अपेक्षा धन्य है। जिस धरा पर देवता भी जन्म लेने के लिये आतुर होते हैं ।

ज्ञान, विज्ञान और अध्यात्म के सभी क्षेत्रों में प्रकाश की किरण सर्वप्रथम भारत के आकाश में ही प्रस्फुटित हुई थी। भारत ऋषि मुनियों का देश रहा है जिन्होंने तप, संयम और ध्यान की साधना से ज्ञान का साक्षात्कार किया और उस ज्ञान को संस्कृत ,प्राकृत ,पालि आदि प्राचीन भाषाओं में वेद,आगम,पुराण,स्मृतियां,महाकाव्य आदि वाङ्मय और इतिहास के रूप में लिपिबद्ध कर दिया ,इतना ही नहीं उस ज्ञान को धातुओं में उत्कीर्ण और पाषाण खंडों में टंकित कर धरोहर के रूप में चिरसंचित कर दिया। अनगिनत पांडुलिपियां, ताड़पत्र ,प्राचीन अभिलेख और पुरातत्व के अनन्त उदाहरण इनके प्रमाण हैं।

ज्ञान विज्ञान की ऐसी कोई विधा नहीं है जो भारतीय ज्ञान परम्परा में उपलब्ध न हो।सृष्टि निर्माण का चिन्तन हो या भूगोल और खगोल का ज्ञान, भाषा विज्ञान हो या ज्योतिष और गणित का सूक्ष्म ज्ञान, धर्म दर्शन और अध्यात्म हो या सम्पूर्ण जीवन पद्धति योग और आयुर्वेद ,जीव -भौतिक - रसायन विज्ञान हो या समाज -राजनीति -अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान सभी का विशिष्ट ज्ञान भारत में अत्यंत प्राचीन काल से अत्यंत समृद्ध रूप से विद्यमान है।

कृषि, हथकरघा और हस्तशिल्प(मिट्टी, काष्ठ, पाषाण और धातु) से लेकर , यांत्रिक प्रगति (नौका, विमान ,प्रक्षेपास्त्र ,अस्त्र-शस्त्र आदि निर्माण)के अति प्राचीन और समृद्ध उदाहरण है।स्थापत्य कला (वास्तु, भवन, महल ,किले ,मंदिर और मूर्ति निर्माण) और

ललित कलाएं(नृत्य ,गीत ,संगीत ,चित्र आदि कलाएं) भीअत्यंत समृद्ध रही हैं।ये कलाएं उत्कृष्ट जीवन शैली के साथ अर्थव्यवस्था के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान भी देती थी।

शिक्षा के क्षेत्र में भारत अत्यंत उन्नत था। प्राग्वैदिक काल में ऋषभदेव ने ब्राह्मी को अक्षर ज्ञान और सुंदरी को अंक ज्ञान देकर के नारी शिक्षा का सूत्रपात किया था ,वैदिक काल में अनेक मंत्रदृष्टा ऋषिकाएं हुई हैं । ये ऋषिकाएं आश्रम के संचालन, छात्रों को पालन पोषण के साथ अध्यापन और शास्त्रार्थ में भी निपुण थी।

भारत में नालंदा विश्वविद्यालय तो विश्व प्रसिद्ध था, वहां के द्वारपाल भी विदेश से आए हुए छात्रों का साक्षात्कार लिया करते थे। आक्रांताओं ने जब वहां के शास्त्रों को नष्ट कियाऔर ग्रंथों को जलाया तो 6 माह तक शास्त्र जलते रहे थे। इसके बाद भी असंख्य पांडुलिपियां विदेशी भाषाओं में अनूदित होकर के मूल रूप में भी सुरक्षित हैं।

प्राचीन काल में विश्व की कोई संस्कृति ज्ञान विज्ञान की इतनी विविध शाखाओं और विधाओं के नामों से परिचित भी नहीं थी जितनी विद्याएं भारत में सीखी और सिखाई जाती थी। भारत में ऋषि वैज्ञानिकों ने पंचमहाभूतों की शक्तियों को देवत्व रूप में वेदों में निरूपित किया है। प्राकृतिक शक्तियों के रूप में वेदों में पर्यावरण का समग्र चिन्तन है। साथ ही सभी मंत्रों में नैतिक मूल्य हैं, आस्था के बीज हैं। हमारे मनीषियों ने जीवन के हर क्षेत्र का श्रेष्ठ प्रबंधन किया है। वर्ण और आश्रम व्यवस्था देकर समाज का प्रबंधन किया।मानव के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त किया।आहार विहार और आचार विचार का भी नियोजन किया। उन्होंने ज्ञान को प्रतीक और परंपराओं के रूप में नियोजित कर दिया। ओम, स्वस्तिक ,श्री ,मंत्र, यंत्र देव,देवालय,वृक्ष आदि अनेक प्रतीक हैं।प्रार्थना ,पूजा और व्रत आदि को परंपराओं में नियोजित करके धरोहर के रूप में हमें दे दिया।

ज्ञान परम्परा के अगाध चिंतन का प्रतिपादन महाभारत के इस श्लोक में दृष्टव्य है -

धर्मे अर्थे कामे मोक्षे च भरतर्षभः।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ।।आदिपर्व 62-53

अर्थात् धर्म ,अर्थ, काम और मोक्ष चतुर्वर्ग के सभी विषय महाभारत में प्रतिपादित हैं, जो यहां है ,वही अन्यत्र है, जो यहां नहीं है ,वह कहीं भी नहीं है।

कम्प्यूटर की निर्माण पद्धति के मूल में संस्कृत है। संस्कृत कम्प्यूटर के लिये सर्वोतम भाषा है।नासा के वैज्ञानिकों ने स्पेस में संदेश भेजने के लिये केवल संस्कृत भाषा को ही उपयुक्त माना। चंद्रयान की सफलता का श्रेय वैज्ञानिकों ने वेदों में निहित प्राचीन

भारतीय ज्ञान की परंपरा को दिया।

अतीत की गौरवशाली परम्परा भविष्य में भी चिरस्थाई रहे इसलिए वर्तमान की धारा का प्रवाहशील होना आवश्यक है।इस उद्देश्य से उच्च शिक्षा विभाग ,मध्य प्रदेश शासन के निर्देशानुसार ,अतिरिक्त संचालक- डॉक्टर सुधा सिलावट के परम संरक्षण में ,श्री अटल बिहारी वाजपेई शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इंदौर के प्राचार्य - डॉ प्रकाश गर्ग के कुशल मार्गदर्शन में आइ क्यू ए सी प्रभारी डॉक्टर वेणु त्रिवेदी के सहयोग से"संस्कृत विभाग" द्वारा दिनांक 29 मई 2024 को "भारतीय ज्ञान परम्परा की विविध संदर्भ "विषय पर वेबीनार का सफलतापूर्वक आयोजन किया गया।

ज्ञान विज्ञान और वाग्मिता का संगम ,वनस्पति शास्त्र के प्राध्यापक डॉक्टर नलिन के.शास्त्री जी(-पूर्व कुल सचिव ,भीमराव अंबेडकर केंद्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ)ने "भारतीय ज्ञान परम्परा में विज्ञान " विषय पर तथा विद्वद्वर व्याकरणाचार्य डॉ रमाकांत पांडे जी(काशी हिंदू विश्वविद्यालय ,बनारस) ने " भारतीय ज्ञान परम्परा की आधुनिक संदर्भ में उपयोगिता " विषय पर विशेषज्ञ के रूप में चिंतन परक,विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान देकर प्राध्यापकगण एवं जिज्ञासु शोधार्थियों के ज्ञान में अभिवृद्धि की। अनेक विद्वानों ने भारतीय ज्ञान परंपरा में विज्ञान ,पर्यावरण संरक्षण ,संतुलन, भूगोल, इतिहास, दर्शन ,योग ,वैदिक गणित, मंत्र की वैज्ञानिकता ,कर व्यवस्था, आहार में भूमिका ,राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रासंगिकता आदि विविध आयामों का स्पर्श करते हुए शोध आलेख प्रस्तुत किये। संपादक मंडल के अथक प्रयासों से इन शोधालेखों का प्रकाशन जी ए सी सी जर्नल में प्रस्तुत है ।

आशान्वित हूं कि इस वेबीनार के शोधालेखों में समाहित भारतीय ज्ञान परम्परा का मंथन कर सुधीजन अवश्य लाभान्वित होंगे।

" सर्वे भवन्तु सुखिनः सन्तु" और "वसुधैव कुटुम्बकम्" की महती कल्याणकारी भावना को धारण करती हुई मैं भारत की पावन धरा और भारतीय ज्ञान परंपरा को नमन करती हूं।

डॉ संगीता मेहता
आचार्य एवं अध्यक्ष ,संस्कृत विभाग
श्री अटल बिहारी वाजपेयी
शास. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय,

सूची

S. No	Name(s) of the Author(s)	Title of the Paper	Page No.
1.	प्रो० (डा०) नलिन के० शास्त्री	भारतीय ज्ञान परम्परा : विज्ञान-केन्द्रित सन्दर्भ	11-22
2.	डॉ० रमाकान्त पाण्डेय	शब्दविज्ञानविमर्श	23-25
3	प्रोफेसर एमेरिटस डा. वीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव	अरुणाचल प्रदेश की अ-भौतिक संस्कृति एवं पर्यावरण : पर्यावलोकन	26-31
4.	डॉ. वेनु त्रिवेदी	श्री रामायण काल के विशेष संदर्भ में	32-36
5.	प्रो. कविता अग्रवाल	भारतीय ज्ञान परंपरा के विविध संदर्भ में भारतीय परंपरागत रसोईघर की भूमिका -एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	37-41
6.	डॉ. मंयक जैन	प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा और इतिहास	42-46
7.	डॉ. संगीता मेहता	भारतीय ज्ञान परंपरा में सांस्कृतिक प्रतीक : तिलक के विशेष संदर्भ में	47-50
8.	Prashant Thote and Gowri S	Vedic mathematics and National Education Policy : A Comprehensive Analysis	51-56
9.	डॉ. अंशुल दुबे	भारतीय ज्ञान परम्परा में मंत्रो का वैज्ञानिक विश्लेषण	57-61
10.	विमल गोस्वामी	भारतीय ज्ञान परंपरा में भूगोल	62-70
11.	डॉ. ज्योति शर्मा	महाभारत में उल्लेखित कर व्यवस्था और करारोपण के आधुनिक सिद्धांतों में समानता	71-75
12.	डॉ सुषमा व्यास	भारतीय ज्ञान परंपरा और विश्व बंधुत्व	76-78
13.	डॉ. अलका जैन	भारतीय ज्ञान परंपरा की वर्तमान सन्दर्भों में प्रासंगिकता	79-86

14.	डॉ.मुकेश जैन,	भारतीय ज्ञान परम्परा में विभिन्न दर्शनों का गणितीय योगदान : जैन दर्शन के विशेष संदर्भ में	87-88
15.	डॉ निशीथ गौड़,	भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरण संतुलन के सूत्र	89-97
16.	प्रो. राजश्री विभूते	धार्मिक ग्रंथो में भौगोलिक ज्ञान	98-99
17.	डॉ. कविता पाल	भारतीय संस्कृति तथा ज्ञान परंपरा में पर्यावरण चेतना	100-102
18.	डॉ. लोकेश कुमार	भारतीय ज्ञान परम्परा में भौगोलिक ज्ञान का महत्व	103-107
19.	डॉ कुंभन खंडेलवाल	विश्व में वसुधैव कुटुंबकम का महत्व	108
20.	रितु शर्मा	भारतीय ज्ञान परंपरा में योग	109-113
21.	डॉ. कल्पना जैन	भारतीय ज्ञान परम्परा :वैश्विक अर्थव्यवस्था नई शिक्षा नीति के संदर्भ में	114-121
22.	डॉ आशा अग्रवाल	शिव और शक्ति: द्वन्द नहीं, पूरक	122-123
23.	डॉ. त्रिपत कौर चावला	भारतोय परम्परागत शिक्षा व्यवस्था में विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षा की सुनीश्चितता का अध्ययन	124-126
24.	प्रो0 (डा.) प्रेम प्रकाश राजपूत,	प्राचीन भारतीय साहित्य में पर्यावरणीय नैतिकता एवं सुरक्षा की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता।	127-134
25.			134-140

Disclaimer: The thoughts, language and examples or analogies in published research papers are entirely of Authors. It is not necessary that both Editor and Editorial Board are satisfied by the research paper. The responsibility of the matter of the research paper is entirely of author. The journal may contain links to Web sites operated by other parties. These links are provided purely for reference purposes. Such links do not imply the journal's endorsement of the material on any other site and the journal disclaims all liability with regard to your access of such Web sites.

भारतीय ज्ञान परम्परा : विज्ञान-केन्द्रित सन्दर्भ

प्रो० (डा०) नलिन के० शास्त्री *

प्रास्ताविक

महान भारत भूमि ने ज्ञान की अविरल धारा से संपूर्ण जगत को सींचा है तथा ज्ञान-विज्ञान की अलौकिक शृंखला के सौरभ से आलोकित प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान की गौरवमयी विरासत ने किया है समस्त जगत् को विस्मित भी। गंगा जल के समान भारत का ज्ञान सदियों से रहा है निर्मल और अविराम। आज जहाँ एक ओर आधुनिक विज्ञान समुन्नत अवस्थिति में पश्चिम की ज्ञान संपदा से शक्ति-संपन्न हो जन-जन को अचंभित कर रहा है, वहीं भारत की प्राचीन भाषाओं; यथा संस्कृत, प्राकृत, पालि, तमिल, तेलगु आदि में निबद्ध ग्रंथों के पारायण पश्चिम के ज्ञान वर्चस्व के सम्मुख प्रश्न-चिह्न भी खड़ा कर रहे हैं और यह भी इंगित कर रहे हैं कि परिष्कृत विज्ञान के साथ-साथ सतत एवं धारणीय विकास की अवधारणा का परिपोषक भारतीय ज्ञान, दूरदर्शिता और मानव कल्याण के सर्वोपरि भाव से स्फूर्त था और था यह संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान के अनुपम संगम की विलक्षण प्रस्तुति भी|

विश्व गुरू था भारत

संपूर्ण भारतीय ज्ञान प्रणाली ऐसे अनंत सत्य की पूर्णता से स्पंदित है, जो पूर्णमद: पूर्णमिदं का शंखघोष करती है। इस प्रणाली के केंद्र में यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ का अवबोध विन्यस्त हुआ है। भारत ने विश्व को उस संस्कृति से चैतन्य किया जब 5000 साल पहले कई सभ्यताएं केवल खानाबदोश और वनवासी थीं| उस कालखंड में सिंधु घाटी की सभ्यता में हड़प्पा संस्कृति का जन्म भारत के विकास की विश्वसनीय गाथा का सम्प्रसार कर रहा है; आज भी। विश्व का पहला विश्वविद्यालय तक्षशिला में 700 ईसा पूर्व में स्थापित किया गया, जिसमें दुनिया भर के 10,500 से अधिक छात्रों ने 60 से अधिक विषयों का अध्ययन किया। चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में निर्मित नालंदा विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में प्राचीन भारत की सबसे बड़ी उपलब्धियों में से एक था। इन उच्च शिक्षा संस्थानों में योगीश्वर श्री कृष्ण द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता (4.33,37–38) में अर्जुन को दिया मार्गदर्शन अनुगुंजित होता था कि ज्ञान आत्म-शुद्धि और मुक्ति का सबसे बड़ा साधन है। भारतीय ज्ञान प्रणालियों की भारतीय संस्कृति, दर्शन और आध्यात्मिकता में एक मजबूत नींव थी, जो हजारों वर्षों के अध्यवसाय से विकसित हुई। भारतवर्ष की भूमि ने ही विश्व को देव भाषा संस्कृत दी जो कि विश्व की शुद्धतम एवं उपयुक्त भाषा है। फोर्ब्स पत्रिका की जुलाई 1987 में प्रकाशित

रिपोर्ट संस्कृत को सभी यूरोपीय भाषाओं की जननी के रूप में आख्यायित करती है और इंगित करती है कि कंप्यूटर सॉफ्टवेयर के लिए यह सबसे उपयुक्त भाषा है। आयुर्वेद, योग, वेदांत और वैदिक विज्ञान सहित ये ज्ञान प्रणालियाँ आधुनिक दुनिया में अभी भी अपने मौलिक चिंतन के कारण उपयोगी बनी हुयी हैं।

प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा समय के साथ विकसित हुई और मानव के आंतरिक और बाहरी दोनों ज्ञान आयामों का इसने पर्याप्त विचार किया एवं व्यक्ति के समग्र विकास को संबोधित किया। इस ज्ञान संपदा ने छात्रों को मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलन की सराहना करना सिखाया | शिक्षा की प्राचीन प्रणाली आगम, त्रिपटिक, वेद, ब्राह्मण, उपनिषद और धर्मशास्त्र के पारायण में निबद्ध थी| ज्ञान के संचरण हेतु औपचारिक और अनौपचारिक दोनों पद्धतियाँ शामिल थीं। शिक्षण काफी हद तक मौखिक था और छात्रों को कक्षा में जो पढ़ाया जाता था, वे उसे याद रखते थे और उस पर मनन करते थे। प्रारंभिक काल में महिलाओं को भी शिक्षा तक पहुंच प्राप्त थी। प्रमुख महिला वैदिक विद्वानों में, हमें मैत्रेयी, विश्वम्भरा, अपाला, गार्गी और लोपामुद्रा जैसे कुछ नामों का उल्लेख मिलता है। बंगाल में टोल, पश्चिमी भारत में पाठशालाएँ, बिहार में चतुष्पदी, दक्षिण भारतीय राज्यों में घटिका, ब्रह्मपुरी अग्रहारा, मंदिर, मठ, जैन बसदियाँ और बौद्ध विहार शिक्षा प्रदान करने के केंद्र थे।

सप्तर्षि : ज्ञान परंपरा के सर्जक और सम्प्रसारक

भारतीय ज्ञान परंपरा में सात ऋषि अत्यंत आदरास्पद रहे हैं : ब्रह्मर्षि कश्यप, जमदग्नि, गौतम, भारद्वाज, विश्वामित्र, वशिष्ठ और अत्रि| ये सप्तर्षि भारतीय ज्ञान प्रणालियों के अग्रदूत हैं। प्रमुख रूप से ब्रह्माण्ड विज्ञान, सूक्ष्म और स्थितीय खगोल विज्ञान (ज्योतिर तथा महाजगतिक विद्या) को महर्षि भृगु और महर्षि वशिष्ठ-शक्ति-पराशर की वंशावली द्वारा आगे बढ़ाया गया। इसी के माध्यम से गणित (बीजगणिता) और ज्यामिति (ज्यामात्रा) की नींव भी रखी गयी| स्वास्थ्य विज्ञान (आयुर्वेद) के उद्भव का श्रेय श्री महर्षि भारद्वाज को जाता है, तो पृथ्वी, स्थलीय और निर्मित-पर्यावरण विज्ञान (वासु और वास्तु विद्या) महर्षि वशिष्ठ और अन्य संबंधित ऋषियों के अवदानों से संबंधित हैं।

महर्षि बौधायन

अंक शास्त्र के सर्जक के रूप में इन्हें जाना जाता है| पाई (pi) को इसका आधिकारिक नाम दिए जाने से पहले और इसका पाइथागोरस प्रमेय मे उपयोग करने से भी पूर्व, महर्षि बौधायन ने अपनी पुस्तक 'बौधायन शुल्बसूत्र' में इसका उल्लेख किया था। शुल्बसूत्र में यज्ञ की वेदियों के निर्माण के लिए विभिन्न गणितिक विधियों का उल्लेख किया गया है। इसमें ज्यामिति के बारे में बहुमूल्य जानकारी है। निम्नलिखित सूत्र उनके बौद्धिक प्रागल्भ्य को रेखांकित करता है:

"दीर्घचतुरश्रस्याक्ष्णया रज्जुः पार्श्वमानी तिर्यग् मानी च यत् पृथग् भूते कुरूतस्तदुभयं करोति ॥

बौधायन प्रमेय में इंगित किया गया है कि विकर्ण की लंबाई के साथ खींची गई एक रस्सी एक ऐसा क्षेत्र बनाती है जो ऊर्ध्वाधर (लंबे) और क्षैतिज (आड़े) स्थल एक साथ मिलकर बनते हैं, जो आधुनिक युग के सूत्र $c^2= a^2+b^2$ की समीचीन आख्या प्रस्तुत करता है।

महर्षि आर्यभट्ट

'आर्यभट्टीय' ग्रन्थ के रचनाकार महर्षि आर्यभट्ट प्रथम पांक्तेय एवं एक विश्रुत भारतीय गणितज्ञ रहे हैं| गणित के क्षेत्र में 'शून्य' का आविष्कार उनका सबसे उल्लेखनीय योगदान रहा है। इस महान योगदान के माध्यम से ही पृथ्वी और चंद्रमा के बीच की दूरी की गणना संभव हो सकी है।

वे सिर्फ एक गणितज्ञ ही नहीं थे, प्रत्युत एक महान खगोलविज्ञानी, ज्योतिर्विद एवं भौतिकी के भी विद्वान थे| उनके महान ग्रन्थ आर्यभट्टीय में दशमलव व्यवस्था, संख्या सिद्धांत (नंबर थियरी) ज्यामिती, त्रिकोंमिती, खगोल विज्ञान, अलजेब्रा आदि के विक्सित सिद्धांतों का समावेशन किया गया है|

गणितीय चिंतन के अंतर्गत इस पुस्तक में दस दशमलव अंकों की गणना, वर्गमूल और घनमूल निकालने के लिए अल्गोरिद्म आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है| ज्यामितीय गणना के क्रम में π का मान 3.1416 इंगित किया गया है, जो आधुनिक गणितज्ञों द्वारा प्रतिपादित मान 3.14159 के समीप है| उन्होंने गणितीय सीरीज, क्वाड्रेटिक समीकरण, चक्रवृद्धि ब्याज, रेशियो, लीनियर समीकरण आदि का भी विस्तृत विवरण दिया है|

काल-क्रिया का वर्णन करने के क्रम में खगोल शास्त्र का सूक्ष्म विवेचन किया गया है| विशेष रूप से सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण के समय ग्रहों की गति की गणना उनका वैशिष्ट्य है| इस पुस्तक के अंत में समतल ज्यामिती के माध्यम से गोलीय ज्यामिती के अध्ययन की प्राविधि का सटीक उल्लेख अत्यंत महत्वपूर्ण है|

महर्षि ब्रह्मगुप्त

महर्षि ब्रह्मगुप्त एक प्राचीन भारतीय खगोलविद और गणितज्ञ थे, जिन्होंने 'शून्य' के सटीक गुणों की खोज की थी| वे उज्जयिनी के प्राचीन भारतीय गणितीय खगोल विज्ञान केंद्र एवं खगोलीय वेधशाला के के निर्देशक थे। उन्होंने अपनी पुस्तक ब्रह्म स्फुट सिद्धांत में इंगित किया कि एक वर्ष में 365 दिन 6 घंटे और 12 मिनट एवं 9 सेकण्ड होते हैं| उन्होंने अपनी गणना के आधार पर घोषित किया कि धरती की परिधि लगभग 36,000km(22,500 मील) होती है, जो आधुनिक गणनाओं के अत्यंत समीप है|

उन्होंने धनात्मक एवं ऋणात्मक संख्याओं के उपयोग एवं व्यवहार के नियमों का प्रतिपादन भी किया|

उन्होंने खगोल विज्ञान और गणित के बारे में अन्य तीन पुस्तकें भी लिखीं थीं, जो बहुत प्रसिद्द हुई हैं|

महर्षि भास्कराचार्य द्वितीय

महर्षि भास्कराचार्य द्वितीय एक भारतीय गणितज्ञ और खगोलविद थे, जिन्होंने संख्या प्रणालियों पर महर्षि ब्रह्मगुप्त की शोध-निष्पत्तियों को आगे बढ़ाया। उनकी 6 निम्नलिखित पुस्तकें प्रसिद्द हुई हैं:

1. लीलावती - गणित
2. बीजगणित
3. गणिताध्याय - गणितीय खगोल विज्ञान
4. गोलाध्याय - क्षेत्र
5. गणना कर्ण कुतूहल - खगोलीय चमत्कारों की
6. वासनाभास्य - सिद्धांत शिरोमणि पर भास्कराचार्य की अपनी टिप्पणी

इसके अतिरिक्त गणितज्ञ और खगोलशास्त्री लल्ला के शिष्यविद्धिदाता तंत्र पर आपका भाष्य भी समादृत हुआ है|

बीज गणित और ज्यमिति गणित एवं ज्यामिति

मध्यकालीन भारत के आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, भास्कर द्वितीय और वराहमिहिर की विरासत का उल्लेख पुराने सूत्रों, जैसे बौधायन, कात्यान सूत्र आदि में मिलता है और विविध गणितीय विधाओं का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। जबड़े के आकार के गोले/चाप/तार (ज्या) पैरों के निशान के रूप में सूक्ष्म निर्देशांक के आधार पर वेदियों (यूप या चैत्य) के निर्माण का विवरण इन महर्षियों के ज्यामितीय एवं गणितीय ज्ञान की उत्कृष्टता को रेखांकित करता है|

कृष्ण यजुर्वेद विद्यालय की तैत्तिरीय शाखा में इस प्रकार के चिंतन का उल्लेख किया गया है| भारतीय संख्यात्मक विज्ञान की द्विआधारी इकाइयाँ, यानी, सूर्या (शून्य) और अद्वैत (एकता या एक) आज कम्प्यूटेशनल विज्ञान के महत्वपूर्ण आधार बन गए हैं।

रसायन विज्ञान

भारतीय तत्वमीमांसा में, योग का प्रयोग सृजन के एकत्व और उससे परे जाने के रूप में किया गया है| योग-क्षेमं वहाम्यहम् (गीता, 9.22) बोध वाक्य के अंतर्गत योगक्षेम शब्द एकता (ज्ञान-शक्ति), और क्षेम सृजन की विविधता को बनाए रखने अर्थात क्रिया-शक्ति का बोधक है। दोनों शब्द ध्रुवीकृत (समावर्तन) के प्रतीक हैं और वे संयुक्त रूप से मानव विचार की उड़ने वाली और गुरुत्वाकर्षण प्रणालियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। क्षेम भौतिक या भौतिक मूल्यों (धातुगर्भ) को आध्यात्मिक या सुनहरे मूल्यों (हिरण्यगर्भ) में परिवर्तित करके जीवन के सार (रस) तक पहुंचने के एक आंतरिक मार्ग का प्रतिनिधित्व करता है।

आचार्य नागार्जुन और आचार्य नित्यनादध्य के शोध कार्यों का पता ऐसे पुराने ग्रंथों से अभिहित होता है|

आचार्य प्रफुल्ल चंद्र रॉय की वर्ष 1902 में प्रकाशित पुस्तक 'ए हिस्ट्री ऑफ हिंदू केमिस्ट्री फ्रॉम द अर्लीएस्ट टाइम्स टू द मिडल ऑफ सिक्सटीन्थ सेंचुरी' में इस तथ्य को प्रामाणिकता के साथ निरूपित किया गया है

आयुर्वेद एवं जीव विज्ञान

भारतवर्ष ने विश्व को आयुर्वेद दिया। आयुर्वेद मनुष्यों के लिए ज्ञात चिकित्सा का सबसे पहला स्कूल है। चिकित्सा के जनक महर्षि चरक ने 2500 साल पहले आयुर्वेद को समेकित किया। आज

आयुर्वेद तेजी से हमारी सभ्यता में अपना सर्वोच्च स्थान हासिल कर रहा है। आधुनिक युग में आयुर्वेद का उदाहरण हमने कोरोना महामारी में देखा। आयुर्वेद के नाम से ज्ञात पारंपरिक भारतीय चिकित्सा प्रणाली में कल्याण के लिए व्यापक दृष्टिकोण पर जोर दिया गया है। इस समय की दुनिया में जहां जीवन-संबंधी स्थितियां बढ़ रही हैं, यह प्राकृतिक सुधार के तरीकों, वैयक्तिकृत उपचारों और वनों की रोकथाम और स्वास्थ्य के संरक्षण पर ध्यान देने की बात करता है

महर्षि सुश्रुत शल्य चिकित्सा के जनक हैं। 2600 साल पहले उन्होंने तथा तत्कालीन स्वास्थ्य वैज्ञानिकों ने सिजेरियन, मोतियाबिंद, कृत्रिम अंग, फ्रैक्चर, मूत्र पथरी और यहां तक कि प्लास्टिक सर्जरी और मस्तिष्क की सर्जरी जैसी जटिल सर्जरी की। संज्ञाहरण का उपयोग प्राचीन भारत में अच्छी तरह से जाना जाता था। 125 से अधिक सर्जिकल उपकरणों का इस्तेमाल किया जाता था। कई ग्रंथों में एनाटॉमी, फिजियोलॉजी, एटियलजि, भ्रूणविज्ञान, पाचन, चयापचय, आनुवंशिकी और प्रतिरक्षा का गहरा ज्ञान भी उपलब्ध है।

चरक संहिता, सुश्रुत संहिता और भारतीय स्वास्थ्य विज्ञान के अन्य स्कूलों (100 ईसा पूर्व) का पता धन्वंतरि की प्राचीन वंशावली से लगाया जा सकता है| वे वाराणसी के अग्रणी आचार्य और भार्गवी-संहिता, भार्गवी-अथर्ववेद और आत्रेय के स्कूल के संस्थापक थे।

कायचिकित्सा (चिकित्सा), कौमारभृत्य (बाल चिकित्सा), शल्यतंत्र (सर्जिकल तकनीक), शालक्यतंत्र (ईएनटी), भूतविद्या (भौतिक रोगविज्ञान), अगदतंत्र (विष विज्ञान), रसयंत्र (कायाकल्प), और वाजीकरणतंत्र (कामोत्तेजक उपचार) के आठ घटक उनके द्वारा सृजित साहित्य में उल्लिखित हुए हैं। ऋषि सुश्रुत द्वारा लिखित सुश्रुत संहिता, दुनिया में ज्ञात सबसे प्रारंभिक चिकित्सा विश्वकोश है जिसमें 184 अध्याय, 1,120 बीमारियों के कारण, 700 औषधीय पौधों, 64 खनिज विधियाँ और 57 पशु स्रोतों कि विधियाँ हैं। आप किसी एक बीमारी का नाम लें और उस पर अध्याय उपलब्ध मिलेगा। इसमें तीन प्रकार के स्किन ग्राफ्ट और पुनर्निर्माण सहित कई सर्जिकल प्रक्रियाओं को करने के निर्देश भी अंकित किये गए हैं|

भारतीय ज्ञान परंपरा का योग अभिन्न अंग है। योग आंतरिक, शारीरिक और आध्यात्मिक कल्याण के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण है जिसकी जड़ें प्राचीन भारत में हैं। इसमें आसन, प्राणायाम (सांस नियंत्रण) और चिंतन जैसे तरीके शामिल हैं जो तनाव को कम करने, आंतरिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने और सामान्य हृदयता को बढ़ाने में मददगार साबित हुए हैं। ये तरीके

वर्तमान समय की पूर्व-निर्धारित, तनावपूर्ण अत्याधुनिक वास्तविकता में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं।

ब्रह्मांडीय ज्ञान

प्राचीन यूनानियों और बेबीलोनियों (3000 ईसा पूर्व) से एक हजार साल पहले, और निश्चित रूप से, गैलीलियो, केपलर, कोपरनिकस और टाइको ब्राहे (1400 - 1500 ईस्वी) से बहुत पहले, भारतीय ब्रह्मांड विज्ञान और स्थितीय खगोल विज्ञान भूकेन्द्रित, सूर्यकेन्द्रित अवस्थिति के विषय में पूरी तरह से ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। इस सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन का कथन अत्यंत प्रासंगिक है, जिन्होंने कहा:

“हम भारतीयों के बहुत ऋणी हैं, जिन्होंने हमें गिनना सिखाया, जिसके बिना कोई सार्थक वैज्ञानिक खोज नहीं हो सकती थी।”

(We owe a lot to Indian who taught us how to count without which no worthwhile scientific Discovery could have been done.)

ब्रह्मांड के गांगेय पैटर्न पदार्थ और ऊर्जा के बीच संबंध, गैर-रैखिकता (समय के भीतर चक्र के रूप में कल्प और युग), और जीवित संस्थाओं पर इसके प्रभाव पर आधारित हैं। स्थूल जगत (ब्रह्मांड) और सूक्ष्म जगत (पिंड) के बीच गुरुत्वाकर्षण कार्य-कारण के नियम का आधार रहा है।
आकाशीय पिंडों की स्थितिगत और निश्चित खगोल विज्ञान (सायन और निरयण) जल्द ही वेदों के छह अंगों (अंग) की निर्णायक नींव बन गई, जिन्हें वेदांग कहा जाता है। महर्षि कणाद एक प्राचीन भारतीय ऋषि, वैज्ञानिक और दार्शनिक थे, जिन्होने ब्रह्माण्ड के निर्माण और अस्तित्व की व्याख्या करने के लिए पदार्थ के परमाणु सिद्धांत का प्रतिपादन किया। महर्षि कणाद ने ही सबसे पहले इस विचार की अवधारणा बतायी कि 'पदार्थ में अविभाज्य इकाइयाँ होती हैं जिन्हें आगे छोटे कणों में विभाजित नहीं किया जा सकता'। सबसे छोटा कण, यानी परमाणु पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। इसे नष्ट नहीं किया जा सकता और ये सभी परिस्थितियों में अपने मूल स्वरूप मे कायम रहता है। महर्षि कणाद ने अपनी पुस्तक 'वैशेषिक सूत्र' में अपने स्पष्टीकरण को 'कणाद सूत्र' भी कहा है। यह पुस्तक विज्ञान, दर्शन और धर्म का संस्लेषण है।

ब्रह्माण्डीय ज्ञान का सटीक निरूपण

ब्रह्माण्डीय ज्ञान का सटीक निरूपण आग के विद्वद्जनों को अचंभित कर देता है| कतिपय उदाहरणों के अवलोकन से भारतीय विशाल ज्ञान संपदा का बोध होता है:

(i) "तथा च स्मर्यते योजनानां सहस्त्रं द्वे द्वे शते द्वे च योजने एकेन निमिषार्धे - न क्रममाण नमोऽस्तुते - ॥" (ऋग्वेद 1.50.04)

ऋग्वेद मे दिए गए एक वर्णन में महर्षि सायणाचार्य कहते हैं, हे सूर्यदेव आप आधे निमेष में 2,202 योजन पार करते हैं।

एक योजन अर्थशास्त्र (और महाभारत आदिपर्व) में लगभग 9 मील की दूरी है।

पुराणों में परिभाषित समय के मापः

1 दिन-रात = 30 मुहूर्त = 24 घंटे 1 मुहूर्त = 30 काल = 24/30 घंटे

1 काल = 30 कस्थ = 24/900 घंटे = 1.6 मिनट

1 कस्थ = 15 निमेष = (1.6/15) मिनट = 3.2 सेकंड

1 निमेष = 3.2/15 = 0.21333 सेकंड

इसलिए यदि आप एक निमेश 0.21333 सेकंड को ध्यान में रख कर प्रकाश की गति को निर्धारित करते हैं तो, (2202 x 9 मील)/(0.21333/2 सेकंड) = 185793.75 मील/ सेकंड आता है जो कि प्रकाश की वर्तमान गति के (186282.397 मील प्रति सेकंड) के समान है।

(ii) जुग सहस्र जोजन पर भानु। लील्यो ताहि मधुर फल जानू ॥ - हनुमान चालीसा

1 जुग = 12000 वर्ष

1 सहस्त्र = 1000

1 योजन = 9 मील

1 मील = 1.6 कि.मी.

जुग x सहस्त्र x योजन = प्रति भानु 12000 x 1000 x 8 = 108,000,००० मील 96, 00, 0000 मील x 1.6 कि.मी. = 172,800,000 कि.मी. सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी है।

नासा के अनुसार सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी 149,600,000 कि.मी. है जो लगभग समान ही है।

(iii) चंद्रमा का प्रकाश अत्राह गारमन्वत नाम त्वष्टुर पीच्यम। इत्था चन्दमसा गृह ॥ (ऋग्वेद 1.84.15) चंद्रमा को हमेशा सूर्य से ही प्रकाश की किरणें प्राप्त होती हैं।

(iv) ग्रहण यत्वा सूर्य स्वभानु स्तमसाविध्यदासुरः। आत्रविद्यथा मुग्धा भुवनान्यदीधयुः ।।

(ऋग्वेद 5.40.5)

हे सूर्य देव ! जब आप उसी के द्वारा अवरुद्ध हो जाते हैं जिसे आपने अपना प्रकाश (चंद्रमा) उपहार मे दिया है तो पृथ्वी अचानक अंधेरे मे डूब जाती है।

जब सारी दुनिया यह सोचकर भयभीत थी कि ग्रहण किसी प्रकार के काले जादू के कारण होता है, तब ऋषियों ने इसके पीछे के विज्ञान को समझाया।

पाश्चात जगत के वैज्ञानिक के कथन से यह स्पष्ट होता है कि भारतवर्ष का योगदान सदैव ही अमूल्य रहा है औरआधुनिक सन्दर्भ में इसकी उपादेयता सदैव अक्षुण्ण रहेगी।

(v) भारत ने संख्या प्रणाली का आविष्कार किया। शून्य से अनंत तक की अवधारणा दी। बीजगणित, त्रिकोणमिति और कलन कि उत्पत्ति भी भारत से हुई 11वीं शताब्दी में द्विघात समीकरण (Quadratic equation) श्रीधराचार्य द्वारा बनाए गए थे। यूनानियों और रोमनों द्वारा उपयोग की जाने वाली सबसे बड़ी संख्या 106 थी, जबकि हिंदुओं ने वैदिक काल के दौरान 5000 ईसा पूर्व में विशिष्ट नामों के साथ 1^{053} जितनी बड़ी संख्या का उपयोग किया था।

स्थापत्य विज्ञान

भारतीय शिल्प शास्त्र हमेशा मानव-केंद्रित डिजाइन सिद्धांतों को आगे बढ़ाने वाली कला और शिल्प की एक समग्र प्रणाली के रूप में उभरा है| भारतीय शिल्प शास्त्र हमेशा मानव-केंद्रित डिजाइन सिद्धांतों को आगे बढ़ाने वाली कला और शिल्प की एक समग्र प्रणाली के रूप में उभरा है| यह बायोसेंट्रिज्म और ब्रह्मांड विज्ञान के साथ एक अन्तरंग संबंध को रूपायित करता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में मंदिरों का स्थापत्य एवं वास्तु शैली भी प्रमुख स्थान रखती है। भारतीय मंदिर वास्तुकला भी आधुनिक युग के लिए किसी चमत्कार से कम नहीं है। भारत के कई मंदिर वास्तुशिल्प महत्वाकांक्षा के आश्चर्यजनक उदहारण हैं, और अधिकांश जटिल नक्काशी और प्रतीकों से सजाए गए हैं। उदहारण के लिए ऐरावतेश्वर मंदिर दारासुरम शहर में द्रविड़ वास्तुकला का मंदिर है, जो महायोगी भगवान् शिव को समर्पित है। पत्थर के मंदिर में एक रथ संरचना शामिल है, और इसमें इंद्र, अग्नि, वरुण, ब्रह्मा, सूर्य, विष्णु जैसे प्रमुख वैदिक और पौराणिक देवता शामिल हैं। बृहदेश्वर मंदिर, जो शिव को समर्पित है, जो भारत के तमिलनाडु राज्य के तंजावुर में स्थित है। इसे राजराजेश्वर मंदिर के नाम से भी जाना जाता है, यह भारत के सबसे बड़े मंदिरों में से एक है और चोल काल के दौरान तमिल वास्तुकला का एक उदाहरण है। तमिलनाडु में महाबलीपुरम के गुफा मंदिरों में समृद्ध सजावट का उपयोग किया गया है, जो सीधे चट्टानों में उकेरी गई है। ऐसे अनंत उदहारण हमारे भारतवर्ष कि ज्ञान भूमि के अलंकरण है, जो आधुनिक युग के विज्ञान से भी परे है और समस्त वास्तुकला प्रेमियों के लिए शोध का विषय है।

सिंचाई के लिए सबसे पहला जलाशय और बांध सौराष्ट्र में बनाया गया था। चंद्रगुप्त मौर्य के समय रैवतका की पहाड़ियों पर 'सुदर्शन' नामक एक सुंदर झील का निर्माण किया गया था। जो संपूर्ण विश्व के लिए एक उदहारण रहा।

ज्ञान की इस विधा ने छोटे भवन की वास्तुकला से लेकर बड़े पैमाने पर देश और शहर की योजना से संबंधित दिशाबोध दिया है। ऋग्वेद के 7वें मंडल से अनुरेखण करते हुए, यह तमिल संगम साहित्य के मामुनिमाया ग्रंथों में और भी स्पष्ट रूप से उल्लिखित हुआ है। वराहमिहिर की बृहत संहिता से लेकर मध्यकालीन जयपुर शहर के डिजाइन तक; समकालीन जवाहर कला केंद्र, और ऑरोविले शहर का लेआउट, प्राचीन परंपराओं को समकालीन ब्रह्मांड संबंधी और मानवकेंद्रित डिजाइनों की और दृष्टिपात कराता है।

पर्यावरण का चिंतन : धारणीयता का भारतीय संबोध

प्रकृति के साथ मानव का सहजीवन, उसकी विविधता, उसके प्राकृतिक रिश्ते, विकास और विकास के जीवन चक्र का विवरण भारतीय ज्ञान परम्परा में विन्यस्त रहा है| आधुनिक विज्ञान आज इसे 'डीप इकोलॉजी' या 'बायोसेंट्रिज्म' के रूप में निरूपित करता है। आर्षपरम्परा में जीवन और प्रकृति का एक सहज और सरल स्वरूप ऋषियों और मनीषियों ने संकल्पित किया था। अथर्ववेद में पर्यावरण के तीन संघटक तत्त्वों - जल, वायु और औषधियों का चिंतन निम्नलिखित ऋचा के माध्यम से संप्रेरण देता है:

त्रीणि छन्दांसि कवयो वि येतिरे, पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।

आपो वाता ओषधय:, तान्येस्मिन् भुवन अर्पितानि।। अथर्ववेद 18.1.1

अर्थात, ये तीनों ही तत्त्व भूमि को आवृत्त किए हुए रहते हैं और प्राणिजगत् को प्रसन्नता देते हैं अतः इन्हें "छन्दस्" (छन्द) कहा गया है। इनके अनेक रूप और नाम होने के कारण इन्हें "पुरुरूपम्" कहा गया है। लोक में जीवन रक्षा के लिए इन तीनों ही तत्त्वों की उपादेयता सर्वाधिक है। वर्तमान विज्ञान जल और वायु को तो पर्यावरण में सम्मिलित करता है किन्तु वनस्पति/औषधियों को नहीं।

पर्यावरण को परिधि शब्द से परिभाषित करते हुए अथर्ववेद में कहा गया है-

"सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्व: पुरुषः पशु:।

यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम्?।।" अथर्ववेद 8.2.25

समस्त प्राणियों के सुखमय जीवन हेतु पूर्ण शुद्ध (ब्रह्म) पर्यावरण (परिधि) आवश्यक है।

पृथ्वी के संरक्षण के भाव स्वयं ही प्रत्येक हृदय में स्थापित हो जाएँ अतः "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" (अथर्ववेद 12.1.12) कहकर पृथ्वी को माँ और स्वयं को उसकी सन्तान के रूप उद्घोषित किया।

अथर्ववेद का ही एक मन्त्र है जो वर्तमान युग की पृथ्वी की पीड़ा को शब्दशः अभिव्यक्त करता है-

"यत्ते भूमे विखनामि, क्षिप्रं तदपि रोहतु।

मा ते मर्म विमृग्वरि, मा ते हृदयमर्पिपम्।। अथर्ववेद 12.1.35

हम पृथ्वी के जिस भाग को खोदते हैं, उसे शीघ्र फिर भरें। किसी भी अवस्था में पृथ्वी के हृदय और मर्मस्थलों को क्षति न पहुँचाएँ। स्वार्थ की अंधी दौड़ में हर व्यक्ति धरती के दोहन में संलग्न है, चाहे उसकी कीमत सम्पूर्ण पर्यावरण के नाश से भी क्यों न चुकानी पड़ जाए|

भारतीय पारिस्थितिक और पर्यावरण विज्ञान को आज विज्ञान में न्यूनीकरणवाद के रूप में दोहराया जा रहा है| आज यह उत्पादन और उपभोग के पैटर्न में एक आदर्श बदलाव और 'सहयोग' द्वारा 'प्रतिस्पर्धा' के प्रतिस्थापन के चिंतन को उद्भूत कर रहा है। भारत की हरी अरण्यक बस्तियों (वन आश्रमों) से धारणीय विकास ही नहीं प्रत्युत सतत विकास की दृष्टि को स्पष्टता मिलती है। इसी दृष्टिबोध के आलोक में संयुक्त राष्ट्र का ब्रंटलैंड आयोग (1983), क्योटो प्रोटोकॉल (1991), जलवायु परिवर्तन पर अंतर सरकारी पैनल और यूएनएफसीसीसी का पेरिस समझौता (2015) बदलाव का प्रतिनिधित्व करते हैं|

भारतीय ज्ञान प्रणालियों ने "वसुधैव कुटुंबकम" (दुनिया एक परिवार है) के विचार से सभी प्राणियों की परस्पर निर्भरता पर जोर दिया। पर्यावरणीय विषय और प्राकृतिक संसाधन संरक्षण और संरक्षण की मांग को ध्यान में रखते हुए, ये सिद्धांत अत्यधिक महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं

करें संदर्शन : नए विहान का

ऐतिहासिक रूप से भारतीय ज्ञान प्रणालियों द्वारा गणित, खगोल विज्ञान और धातु विज्ञान जैसे विषयों में अभूतपूर्व प्रगति के साक्ष्य उपलब्ध हैं| जेमोलॉजिकल इंस्टीट्यूट ऑफ अमेरिका के अनुसार, 1896 तक, भारत दुनिया के लिए हीरे का एकमात्र स्रोत था। संयुक्त राज्य अमेरिका स्थित IEEE द्वारा विश्व वैज्ञानिक समुदाय में सिद्ध कर दिया कि बेतार संचार प्रकाशीय तंतु (optical fibre) के प्रणेता प्रोफेसर जगदीश बोस थे न कि मारकोनी। दंत चिकित्सा, आयुर्वेद, प्राचीन फ्लश शौचालय प्रणाली, क्रूसिबल स्टील, मोतियाबिंद सर्जरी, वूट्ज़ स्टील, जस्ता शुद्धिकरण, प्लास्टिक सर्जरी, सिविल इंजीनियरिंग और वास्तुकला, उत्पादन तकनीक,

जहाज निर्माण और नेविगेशन, शून्य, दशमलव प्रणाली और त्रिकोणमिति जैसी प्राचीन भारतीय सामान्यताओं का उपयोग अभी भी वर्तमान ज्ञान और प्रौद्योगिकी में बड़े पैमाने पर किया जाता है, जो आविष्कार और उन्नति को बढ़ावा देने में भारतीय ज्ञान प्रणालियों के महत्व को रेखांकित करता है।

हाल ही में श्री एस. सोमनाथ, अंतरिक्ष विभाग के सचिव और अंतरिक्ष आयोग के अध्यक्ष, ने कहा-"वैमानिकी, समय की अवधारणा, ब्रह्मांड की संरचना, गणित, धातु विज्ञान और विमानन के वैज्ञानिक सिद्धांत सबसे पहले वेदों में पाए गए थे|"

भारत वर्ष ने विश्व को वर्षों तक अर्जित ज्ञान को आत्मसात और विश्लेषण कर नए ज्ञान को संश्लेषित किया। अब समय है भारत के द्वारा विश्व को दिए गए ज्ञान को संजो कर इसका संवर्धन किया जाए और भारतवर्ष के जनता को संस्कृति, पहचान और प्राप्त ज्ञान से जोड़ा जाए। तब ही इसकी उपादेयता सिध्द होगी। अब यह हम सभी का कर्त्तव्य बनता है कि भारत वर्ष की इस अनमोल धरोहर, ज्ञान को संवर्धित करके रखें, जिससे कि विश्व का कल्याण हो सके और आने वाली पीढ़ी भारत को हीन दृष्टि से न देख कर, गौरवपूर्ण दृष्टि से देखे।

शब्दविज्ञानविमर्श

डॉ० रमाकान्त पाण्डेय
प्रोफेसर
अध्यक्ष
व्याकरण विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

आत्मा शुभ एवं अशुभ कर्मो के कारण जब किसी शरीर का संवरण करती है, तो वह जीवात्मा कही जाती है । और उस शरीर से ही उसकी यात्रा शुरु होती है। यात्रा में प्रारम्भ से बाह्य व्यवहार एवं आन्तरिक व्यवहार दोनों में शब्दों की आवश्यकता है। प्राणिमात्र को व्यवहार के लिए शब्दों की आवश्यकता पड़ती है। और ज्ञान भी शब्दाधीन होता है। जीव की साधनावस्था में सूक्ष्म शब्द की सत्ता रहती है। कभी-कभी व्यवहारकर्ता आन्तरिक यात्रा में शब्द को ध्वनि के रूप में व्यवहार करने में असमर्थ हो जाता है। लेकिन शब्द नहीं हैं ऐसा नहीं कर सकतें। इसलिए सर्वप्रथम जीव की बाह्य यात्रा में शब्दों के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए उसे लिखा गया है कि'

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते ।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते ।। [1]

बाह्य व्यवहार में शब्द परिमिति सखण्ड एवं सावयव तथा क्रमशील होता है। उसकी क्रमवत्ता का मूल कारण वर्णध्वनि है। ध्वनियों के कारण श्रूयमाण एवं स्थूल है। तथा अनेक व्यापार प्रतीत होते है। द्रुत, विलम्बित इत्यादि। यह सब ध्वनियों का महात्म्य है। इसको परिभाषित किया गया है कि - व्यवहारकाल में शब्द की दो मर्यादायें होती है।

१- प्रकृति एवं प्रत्यय से रहित

२- प्रकृति प्रत्यय के साथ

उसी में एक को अव्युत्पन्न तथा दूसरे व्युत्पन्न कहते है।

महर्षि पाणिनि ने भी इसको प्रमाणित किया है- अर्थ की सत्ता दोनों में रहती है, अपितु लोकव्यवहार में प्रचलित अपभ्रंश शब्दों में भी अर्थ की सत्ता होती है। इसलिए आपामर जन व्यवहार करते है। यह परम्परा अनादि काल से चली आ रही है। शब्दविज्ञान के बिना भगवान् के नाभिकमल से उत्पन्न हिरण्यगर्भा भी किंकर्तव्य के प्रश्नों में उलझ जाते है। जैसा कि वादरायण लिखते है कि-

स चिन्तयन् द्व्यक्षरमेकदाम्भसि ।

[1] वाक्यप्रदीयम ब्रह्मकाण्ड कारिका सं० १२३

उपाश्रृणोतद् द्वि:गदितं वचो विभु: ।
स्पर्शेषु यत् षोडशमेकविंशम् ।
निशिकञ्चनानां नृप यद् धनं विदु:।। [2]

अर्थात् - ब्रह्मा एक बार यह विचार कर रहा था कि मेरा क्या कर्तव्य है। तो उसी समय अकाशवाणी हुई कि स्पर्शसंज्ञक वर्णो में षोडश (१६) एवं एकविंश २१ यह दो अक्षर मिलाकर ही कर्तव्य की पहचान करें। स्पर्श - क से म तक वर्ण - २५ इनमें सोलहवों - त एवं इकीसवों प - अर्थात तप करो, तभी कुछ सृष्टि के गुढतम रहस्य को समझ सकोगें यही निष्किंचन पुरुषों का धन है । इस प्रकार शब्द की विराट सत्ता है। इस विराट् पुरुष को शब्द से जाना जाता है। इसका दूसरा नाम वृषभ है। जैसा कि ऋग्वेद में "शब्द" को वृषभ एवं महादेव के रुप में व्यवहार किया गया है-

चत्वारि श्रृङ्गा: त्रयोऽस्य पादा:
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽस्य
त्रिधा बद्धो बृषभो रोरवीति
महोदेवो मर्त्यां आविवेश ....

शब्द की सगुण सत्ता है। अगुण सत्ता को ही समाधि में ही जाना जा सकता है। सगुण एवं विराट शब्द की सत्ता में भेद एवं ससर्ग का होना आवश्यक है। उसी से प्रपञ्च की मिथ्या सत्ता भी प्रतीत होती है। प्रपञ्च के कारण ही निष्क्रय में क्रियाशीलता -कर्तापन इत्यादि धर्मो का अध्यास होता है। जब भेद एवं ससर्ग इन दोनों का अतिक्रमण हो जाता है, तो शब्द की सत्ता में सर्वविकल्पातीतता की अनुभूति होने लगती है और व्यवहर्त्ता जीवात्मा की समाधि लगने लगती है, उसी अवस्था में शब्द ज्योति का भान होता है। उस ज्योति में किसी भी प्रकार का विकल्प नहीं रहता है।

प्राप्तरूपविभागाया: यो वाच: परमो रस: ।
यत्तत्तद् पुण्यतमं ज्योतिस्तस्यमार्गोऽयमाञ्जस:।। [3]

संसार के तीन प्रकार की ज्योतियाँ होती है। जीव के आभ्यन्तर जो ज्ञानस्वरूप ज्योति प्रथम है। दूसरी प्रकाश अप्रकाश इन दोनों की प्रकाशक शब्दारण्य ज्योति है। शब्दारण्य ज्योति में कार्यत्वेन सम्बद्ध ज्योति तीसरी है। इन तीनों में शब्दारण्य ज्योति पुण्यतमा है। शब्दज्योति आन्त: प्रणवरूप है। भगवती श्रुति इसको व्याख्यायित करती हैं-

[2] श्रीमद्भागवद्महापुराण - स्करन्ध - २ अ० - ०९
[3] वाक्यप्रदीपम् ब्रह्ममण्डलम् कारिका सं० १२

ओङ्कार एवं सर्वावाक् सैषां स्पर्शोष्मभिर्न्यज्य माना बह्वी नानारुपा भवति भगवान् वादरायण भी शब्दविज्ञान को मानव विज्ञान का मूल केन्द्र बताया है। तथा उसके अनादि की वृहत् चर्चा की है।

समाहितत्मनो ब्रह्न् ब्राह्मण: परमेष्ठिन: ।
हृद्याकाशादभून्नादो वृतिरोधाद् विभाव्यते ।। श्रीमद्भागवत स्कन्ध १३ अ० ६ श्लोक सं० ३७

अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ होने के पहले ब्रह्मा ने अपने मन को पूर्णतया समाहित किया, उसके बाद उनके अन्त:करण में नाद हुआ, जो वृत्ति के निरोध करने पर श्रोता भी अनुभव कर सकता है। उस नाद के उपरान्त स्वयं प्रकाश, अव्यक्त प्रभव त्रैवर्णिक = अ + उ + म् शब्द सर्वप्रथम ब्रह्मा को गृहीत हुआ। जो शब्दज्योति का साक्षात् स्वरूप है। कर्णो का बन्द कर जीवात्मा जब सोता है तब स्थूलरूप में परिणत शब्द को सुनता है। और इसी प्रणव रुप अनादि शब्द से अक्षरमाला अर्थात् वर्णमाला जो लौकिक है अनेक लिपियों में जानी जाती है। जैसे अंग्रेजी में A B C D E F G H I J K L M N O P Q R S T U V W X Y Z इनमें पाँच वर्ण स्वर (Vowel) है २१ व्यञ्जन (Consonant) है। स्वरो का निर्णय किसी भी शब्द के उच्चारण पर निर्भर करते है। जबकि अन्य जगहों में उच्चारण से कोई लेना देना नहीं है। अ इ उ इत्यादि स्वर अनादि है। इनका क्रम भी अनादि है। किसने निर्माण किया यह आज तक कोई बता नहीं पाया। अनादि का तात्पर्य नित्यता से नहीं है अपितु प्रवाह से है ।

अरुणाचल प्रदेश की अ-भौतिक संस्कृति एवं पर्यावरण : पर्यावलोकन

प्रोफेसर एमेरिटस डा. वीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव *

पूर्व आचार्य-अध्यक्ष, भूगोल विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

प्रादेशिक परिप्रेक्ष्य : सर्वज्ञात है की अरुणाचल प्रदेश भारत का एक उत्तर पूर्वी राज्य है. यह एक पौराणिक प्रदेश है. यह तीन तरफ से भूटान, तिब्बत, चीन और म्यांमार से घिरा है. दक्षिण में असम और नागालैंड जैसे भारतीय राज्य हैं.

सर्व ज्ञात है कि अरुणाचल प्रदेश 'प्रकृति की कविता है'* , अतः स्वाभाविक है कि अ-भौतिक संस्कृति में यहाँ के समाज के विचार, विश्वास, सामाजिक नियम, नैतिकता, सोचने और व्यक्त करने का ढंग आदि सम्मिलित होते हैं. साथ ही, जैसा कि सर्वज्ञात है, भाषा, शिष्टाचार, पहनावा, गीत-संगीत, कलायें, नृत्य, धर्म, अनुष्ठान, लेन-देन, धार्मिक और सामाजिक धारणायें, सामाजिक भूमिका, नैतिकता, कानून, मूल्य जैसे मानव संस्कृति के तत्व भी आते हैं. ऐसे सब तत्व मिलकर सम्बंधित समाज की संस्कृति बनाते हैं, जिसे हम अ-भौतिक संस्कृति कहते हैं. इनमे भाषा, भोजन, वार्तालाप, पहनावा, बोल-चाल, रीति-रिवाज, पारिवारिक सम्बन्ध, रिश्ते जैसे मानवीय गुण आते हैं जो समग्रता में मानव व्यवहार निरंतर मार्गदर्शन देते हैं ताकि समाज का सञ्चालन सुचारू रूप से हो सके. अरुणाचल प्रदेश की अ-भौतिक संस्कृति के विहंगम दृश्य के पर्यावरणीय पक्षकी प्रस्तुति के पूर्व कर्पोप रीबा की कविता पढने, देखने और सुनने की प्रीति जागृत करती प्रतीत होती है :- ("मैं कहता आंखन की देखी, तू कहता कागद की लेखी" कबीर)

"भौगोलिक दृष्टि से पूर्व में ऊगते सूरज की भूमि है,

जहाँ पहाड़ आसमान को चीरते हैं और नदियाँ अनुग्रह के साथ कल-कल करती हैं,

अरुणाचल प्रदेश, एक दिव्य स्थान, जहाँ प्रकृति भूमि को सुन्दर रूप प्रदान करती है,

बर्फ से ढकी चोटियों से लेकर हरी-भरी घाटियों तक....

यहाँ विविधता भरपूर है, इस स्थान के आकर्षण को पूरक करते हुए,

असंख्य परम्पराओं वाली जन-जातियाँ पनपती हैं,प्रत्येक प्राचीन काल की कहानियां सुनाती हैं.

तवांग से लोंगडिंग तक की खोज, हर कोनो से कहानियाँ को खोलती है,

इस भूमि के रहस्य खुलते हैं, प्रकृति और संस्कृति के स्वर्ग का खुलासा करते हैं.

मेलों और त्योहारों की भरमार, अनोखे नृत्य और धुनों के साथ,

जन -जातियों की विरासत की प्रदर्शित किया जाता है, रंगीन और जीवंत सजावट में,

यहाँ विविधता भरपूर है, इसके आकर्षण को पूरक करते हुए,

असंख्य परम्पराओं वाली जन-जातियाँ पनपती हैं,

प्रत्येक प्राचीन काल की कहानियां सुनाती हैं,

तवांग से लोंगडिंग तक की खोज, हर कोने से कहानियों को खोलती हैं,

इस भूमि के रहस्य खुलते हैं, प्रकृति और संस्कृति के स्वर्ग का खुलासा करते हैं.

मेलों और त्योहारों की भरमार, अनोखे नृत्य और धुनों के साथ,

जन-जातियों की विरासत को प्रदर्शित किया जाता है, रंगीन और जीवंत सजावट में". (सृजन: कार्पोप रीबा).

अरुणाचल प्रदेश: भूमिका स्वरुप अरुणाचल प्रदेश भारत का एक उत्तर-पूर्वी राज्य है. इसे "ऊगते सूर्य का पर्वत" भी कहा गया है. इसके दक्षिण में असम, दक्षिण-पूर्व में नागालैंड, पूर्व में म्यांमार, पश्चिम में भूटान और उत्तर में तिब्बत स्थित हैं. ब्रह्मपुत्र नदी अपनी सहायक नदियों के साथ यहाँ प्रकृति के सौन्दर्य में अभ-वृद्धि करती है. ईटानगर इस राज्य की राजधानी है, और यहाँ की बोल-चाल की भाषा हिन्दी है. यह एक समृद्ध जैव विविधता और विरासत स्थलों में एक है और इस तरह अरुणाचल प्रदेश की अ-भौतिक संस्कृति भारतीय ज्ञान परम्परा का एक दर्पण कहा जा सकता है.

जहाँ तक भौतिक घटकों का प्रश्न है इसका अधिकांश भाग हिमालय पर्वत से आवृत्त है अरुणाचल प्रदेश की चार प्रमुख नदियाँ हैं – ब्रह्मपुत्र (दिहांग) यहाँ की प्रमुख नदी है (चित्र-1). इसके साथ सुबनसिरी, सिआंग, तिरप, कामेंग, लोहित और तिरप जैसी नदियाँ हैं जो इसके भौतिक गठन का आधार बनाती हैं. पर्वतों में हिमालय प्रमुख है जिसका पूर्वी भाग इसे चीन से जोड़ता है. यहाँ के प्रमुख दर्रों में बुमला दर्रा, दिफू दर्रा, पंग्सी दर्रा प्रमुख है जो तिब्बत और चीन से आवागमन और विनिमय के अवसर प्रदान करते हैं.

चित्र – 1 : ब्रह्मपुत्र नदी

बौध मठ अरुणाचल प्रदेश के भौतिक पार्श्व में ज्ञान और ध्यान के केंद्र हैं और अ-भौतिक संस्कृति के प्राचीन केन्द्रों के रूप में आज भी सक्रिय हैं (चित्र-2).

चित्र – 2 : एक बौध मठ: सक्रिय ज्ञान और ध्यान का प्रतीक

सर्वज्ञात है की पारंपरिक ज्ञान में वह जानकारी, कौशल और प्रथाएं सामान्य रूप से आती हैं जो समाज में पीढ़ी-दर-पीढ़ी विकसित और हस्तान्तरित होती जाती हैं और किसी देश / क्षेत्र की सांस्कृतिक और अध्यात्मिक पहिचान का हिस्सा बनती हैं जिन्हें हम पारंपरिक ज्ञान से जोड़ते हैं.

पारंपरिक ज्ञान, ज्ञान की सरिता का सतत प्रवाह होता है और सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक परिस्थितियों के अनुसार समाज या देश की अध्यात्मिक पहिचान का हिस्सा बनता जाता है.

पारंपरिक ज्ञान अतीत और वर्तमान ज्ञान के सतत प्रवाह वाली सरिताओं का संगम भी होता है. यदि हम भारत पर अंग्रेजों के शासन के काल-खण्ड का सन्दर्भ लें, तब भले ही प्रशासनिक/ राजनितिक तन्त्र विदेशियों के अधीन में था किन्तु भारत जैसे देश और समाज की अपनी ज्ञान परम्परा को विदेशी शासक पूर्णतया समझ नहीं सके थे और इसलिए उसे अधिक नष्ट भी नहीं कार सके.

एक उदहारण दो बौद्ध साधुओं का है. अपने गणवेश में माला जपते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान को घूमते दीखते हैं (चित्र-3) :

चित्र – 3

चित्र 3 में द्रष्टव्य बौद्ध साधू हाथ में माला जपते हुए भ्रमण कार रहे प्रतीत होते हैं. सही है किन्तु एक माला के एकसौ-आठ गुरियों पर वे 108 कदम चलते हैं, अपने एक कदम की दूरी उन्हें ज्ञात होती है. गंतव्य स्थान तक आने में कितनी बार माला ने कुल कितने पूर्णचक्र किये वह उनके प्रारम्भ के स्थल से गन्तव्य स्थल की दूरी में बदल जाता है, दिशा का ज्ञान उन्हें होता है और मित्रो, दिशा और दूरी मानचित्र का आधार होती है. इस तरह ये बौद्ध साधू तत्कालीन शासकों के बिना संज्ञान में आये, दुर्गम क्षेत्रों के मानांकन में अपना योगदान देते हैं. इतना ही नहीं उनके कड़ी पण्डित नैन सिंह रावत जैसे भूगोलविद से जुडी होती है, जो भारतीय सर्वेक्षण संगठन के अधिकारियों तक इस ज्ञान को पहुंचाकर अपना कर्तव्य पूरा करते हैं. यह पारंपरिक ज्ञान को मूर्तरूप देने की कला भारतीय सर्वेक्षण विभाग द्वारा प्रारंभिक, हस्तलिखित मानचित्रों द्वारा दिए गए ज्ञान का आधार बनी.

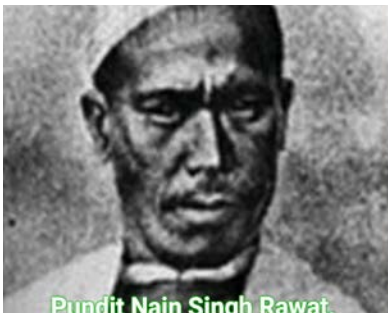

4मान्यताएँ, सिद्धान्त और सार्थकता का क्षेत्रीय स्तर:

अरुणाचल प्रदेश की अ-भौतिक संस्कृति एवं पर्यावरण : पुनर्विलोकन के सन्दर्भ में अरुणाचल प्रदेश के निवासियों की पर्यावरणीय सोच का क्षेत्रीय अध्ययन निम्नलिखित दो सन्दर्भों में किया गया है

(चित्र -5)-

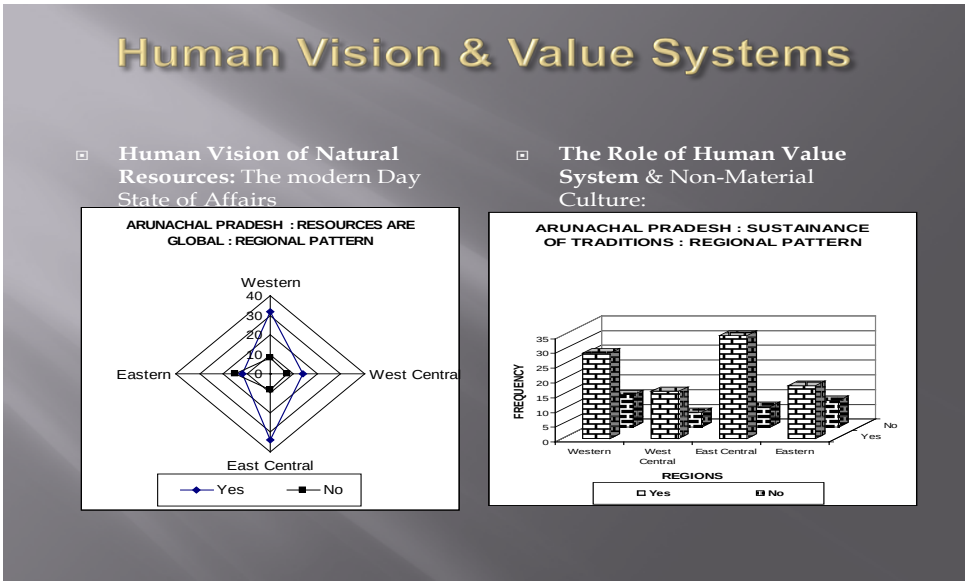

चित्र - 5

क :प्राकृतिक संसाधन सबके लिए हैं :-पश्चिम और पूर्व अरुणाचल का समाज अधिक सहमत

ख : अरुणाचल प्रदेश में पारंपरिक ज्ञान का पोषण हो रहा है: पश्चिम और मध्य-पूर्व क्षेत्र में अधिक, शेष क्षेत्रों में कम.

ग : अरुणाचल प्रदेश में नगरों के प्रति संवेदनशीलता:

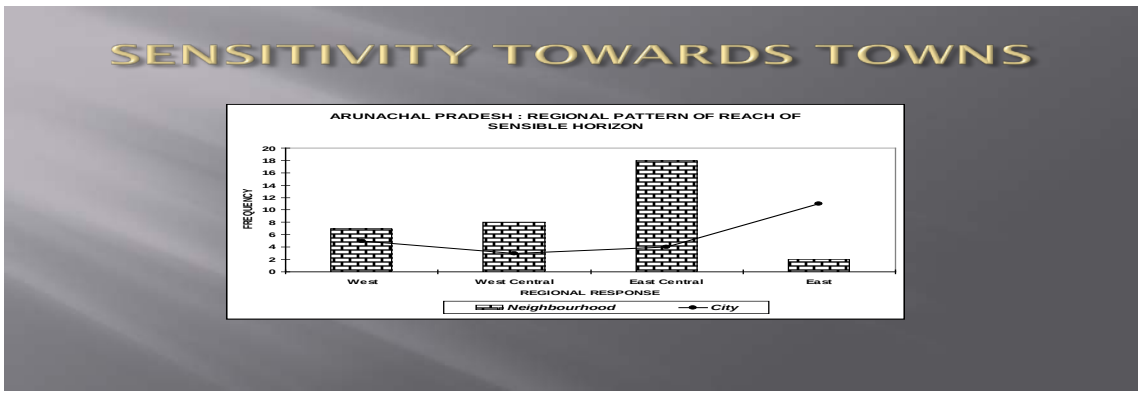

चित्र – 6

नगरीय संवेदनशीलता : मध्य पूर्वी भाग में सर्वाधिक, पूर्वी भाग में न्यूनतम

अरुणाचल प्रदेश में पर्यावरण की गुणवत्ता की सजगता

दलाई लामा की मानवीयता और अरुणाचल प्रदेश:

चित्र- 7

"Every day think as you wakeup. Today I am fortunate to have woken up. I am alive, I have a precious human life, I am not going to waste it. I am going to use all my energies to develop my-self. To expand my heart out to others. To achieve enlightenment for the benefit of all human beings. I am going to have kind thoughts towards others. I am not going to get angry or think badly about others. I am going to benefit others as much as I can."

---

shrivastava1939@gm.com */Ex- Chairman, I.G.U. International Commission, Washington*

-श्री रामायण काल के विशेष संदर्भ में

डॉ. वेनु त्रिवेदी

प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष

भूगोल, श्री अटल बिहारी वाजपेई, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इंदौर

सारांश -

प्राचीन भारतीय ऋषियों, मुनियों एवं दार्शनिकों ने पर्यावरण के साथ सदैव सौहार्द पूर्ण संबंध प्रकट किए हैं। यह पवित्र वनों के उदाहरण से भी स्पष्ट होता है। प्राचीन काल से ही स्थानीय रूप से देवी देवताओं की पूजा करने के उद्देश्य से वनों की महत्ता स्पष्ट की गई थी । वास्तव में यह वैदिक काल से ही अत्यंत महत्वपूर्ण पर्यावरणीय तत्व के रूप में स्वीकार किए गए थे। प्राचीन चिंतन परंपरा में हम भारतवासियों का प्रमुख धर्म ग्रंथ श्री रामायण में प्राकृतिक वनस्पति के रूप में वनों के वितरण पर पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है । आर्यों का प्रमुख चारित्रिक गुण वनों का संरक्षण था जो आज भी समसामयिक है ।वाल्मीकि रामायण वानस्पतिक सूचनाओं के प्रमुख स्रोत थे। उसमें पौधों व वनों की एक विस्तृत सूची तथा उनकी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति प्रदर्शित होती है ।जब इस ग्रंथ की रचना की गई थी तब बहुत घने जंगल यथा नैमिषारण्य, चित्रकूट, दंडकारण्य तथा पंचवटी के रूप में उत्तर में अयोध्या से प्रारंभ होकर दक्षिण में लंका तक विस्तृत क्षेत्र में विद्यमान थे। जिनका वर्णन श्री रामायण में मिलता है यही नहीं किष्किंधाकांड में ऐसा माना जाता है कि भगवान श्री राम ने वनवास के 10 वर्ष दंडकारण्य में ही व्यतीत किए थे। प्रस्तुत शोध पत्र उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में वनस्पति वितरण को श्री रामायण काल में विश्लेषित करने का एक प्रयास है।

Keywords- प्राकृतिक वनस्पति, श्री वाल्मीकि रामायण, नैमिषारण्य, चित्रकूट, दंडकारण्य, पंचवटी, किष्किंधा कांड।

परिचय - प्राचीन भारतीय धर्म ग्रंथो में पर्यावरण को एक जीवंत इकाई माना जाता था यह तथ्य स्वीकार किया गया कि पर्यावरण को खतरे में नहीं डालना चाहिए भारतीय चिंतन परंपरा में भारतीयों का प्रमुख धर्म ग्रंथ महर्षि वाल्मीकि रचित श्री रामायण का रचना काल आधुनिक विद्वान त्रेता युग में सातवीं से चौथी शताब्दी ईसा पूर्व मानते हैं। कुछ का कहना है कि यह 600 ईसा पूर्व लिखा गया था। भारत के प्राचीन साहित्य में वनों की विभिन्न श्रेणियां प्राप्त होती हैं। "आरण्यक "में प्राचीन ऋषि शांति से रहते थे। वनों रूपी जंगल का एक विशिष्ट भाग जो तपस्या के लिए आरक्षित था "तपोवन" कहलाता था। अरण्यक व तपोवन दोनों अभयारण्य या मृगवन थे, जहां राजा, राजकुमार वह आमजन ऋषियों से ज्ञान,आशीर्वाद, दिशा निर्देशन प्राप्त करने आते थे। 400 बीसी में पाराशर द्वारा लिखा गया "वृक्षायुर्वेद" ग्रंथ वनस्पति विज्ञान पर आधारित था । वनों का वितरण प्रमुखत: स्थलाकृति वह जलवायु

पर निर्भर करता है । निःसंदेह यह प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से एक बहुत ही उपयोगी तत्व है, था व रहेगा। यह न सिर्फ जलवायु को नियंत्रित करता है अपितु मृदा की उर्वरता वह पशुओं के लिए चारे की व्यवस्था भी करता है इससे संबंधित प्रदेश को मौद्रिक लाभ भी प्राप्त होता है। आर्य सभ्यता में वनों को बहुत अधिक महत्व प्रदान किया था क्योंकि उनकी जीवन शैली में ही वनों का प्रमुख स्थान था। ऐसा माना जाता है कि महर्षि वाल्मीकि ने प्रभु श्री राम के काल में ही श्री रामायण की रचना कर दी थी। अतः उसके संबंध में वाल्मीकि का ज्ञान अत्यंत सटीक एवं तथ्य परक है। यह ग्रंथ उत्तर में अयोध्या से लेकर दक्षिण में लंका तक के विस्तृत क्षेत्र के वनों का वितरण प्रदर्शित करता है। जब इस ग्रंथ की रचना हो रही थी तो वहां घने वनों का विस्तार था। श्री राम ने वनवास के 10 वर्ष दंडकारण्य में ही व्यतीत किए थे। किष्किंधा कांड, बालकांड, अरण्य कांड इत्यादि में वनों के संबंध में पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है। प्रस्तुत प्रपत्र में श्री रामायण काल के इन्हीं वनों का विस्तृत विवरण एवं विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

विवेचन – महर्षि वाल्मीकि रचित श्री रामायण में वनों को सामान्यतः शांत (calm), मधुर (sweet),रौद्र (anger), वीभत्स (fearful) के रूप में बताया गया था जो चार भावों को प्रकट करते हैं एवं जो संपूर्ण वन पर्यावरण को दर्शाते हैं [1]। यह ग्रंथ उत्तर में श्री रामलला की जन्मस्थली अयोध्या से लेकर दक्षिण में रावण के प्रदेश श्रीलंका तक के विस्तृत क्षेत्र को दर्शाता है। साथ ही उनके मध्य के भू दृश्य, पर्वत, नदी बेसिन, वन इत्यादि का विस्तृत एवं सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह उस समय के घने वन नैमिषारण्य, चित्रकूट, दंडकारण्य, पंचवटी, किष्किंधा (पंपा सरोवर) एवं लंका का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है ।किष्किंधा कांड में वनस्पति व वन संपदा का भौगोलिक वितरण दर्शाया गया है। बालकांड में भी गंगा के किनारे पौधे व वनस्पति का वितरण दर्शाया गया है। अरण्यकांड में महर्षि अगस्त्य ऋषि का आश्रम भी बेल पत्तियों से ढका तथा पंचवटी एक परिष्कृत पारिस्थितिकी स्वरूप में दिखाई देते हैं, जिससे फल, औषधि पौधे तथा जैव विविधता प्राप्त होती है। इस ग्रंथ में भारत के पौधों की भिन्न-भिन्न प्रजातियों का भी उल्लेख है साथ ही साथ श्री रामचंद्र जी का अयोध्या से रामेश्वरम होते हुए लंका तक का संपूर्ण वनवास काल का प्राकृतिक चित्रण किया गया है। इसमें वानस्पतिक क्षेत्र तो है ही किन्तु हिमालय पर्वत जिसे कैलाश प।र की संज्ञा दी गई है का उल्लेख श्री हनुमान जी लक्ष्मण जी के लिए जो संजीवनी बूटी लेकर आए थे उस संदर्भ में भी वर्णन है। वास्तव में यह एक बहुत आश्चर्यजनक तथ्य है कि मात्र एक महर्षि ने अपने ज्ञान के आधार पर भारत भूमि की वनस्पति का वर्णन विस्तार पूर्वक किया है।अयोध्या से श्रीलंका तक का क्षेत्र चार वन क्षेत्र से गुजरता है यथा_ उष्णकटिबंधीय पतझड़ वन, शुष्क एवं आर्द्र पतझड़ वन, श्रीलंका के उष्णकटिबंधीय सदाबहार वन

तथा अल्पाइन प्रदेश के उपवन (हिमालय)[2]। इन्हीं वनों का परोक्ष रूप से उल्लेख श्री रामायण में प्राप्त होता है। श्री रामायण में वनस्पतियों को दो भागों में विभाजित किया है _

अ _वन

ब _घास

वनों के प्रकार व वितरण - सामान्यतः वनों का वितरण वर्षा वितरण,भौतिक स्वरूप, मिट्टी की रासायनिक संरचना, मौसमी दशाएं, क्षेत्र की ऊंचाई इत्यादि पर निर्भर करता है। भारत की जलवायु की विभिन्नता के परिणाम स्वरूप विभिन्न प्रकार के वन भी यहां पर पाए जाते हैं मुख्य वन जो पुराने में वर्णित थे तथा रामायण वह महाभारत में भी जिनका उल्लेख मिलता है वे निम्न है[3]:-

1) चैत्र रथ वन: यह वन यमुना के स्रोत के उत्तर में तथा भागीरथी के पश्चिम में वर्तमान देहरादून व मसूरी के पास में स्थित थे जो कि अत्यंत घने "कुबेर" के माने जाते थे।अर्थात यहां अत्यंत बहुमूल्य इमारती लकड़ियां प्राप्त होती थी।

2) नंदनकानन वन: यह भी हिमालय क्षेत्र में ही पाए जाते थे जो कुबेर के ही माने जाते हैं परंतु जिनका महत्व प्राकृतिक सौंदर्य के कारण था। इसमें लोधरा,पद्मका(चंदन की प्रजाति), देवदार इत्यादि मुख्य वृक्ष थे जिनका वर्णन रामायण में प्राप्त होता है देवदार भारत की अत्यंत महत्वपूर्ण लकड़ी मानी जाती है ।

3) सालवन: यह वन अयोध्या के पश्चिम में पाए जाते थे जो की गोमती तथा सरयू नदी के मध्य में विस्तृत थे यह रामायण काल का एक बहुत बड़ा वन क्षेत्र माना जाता है।

4) कुरूजंगला: सरस्वती नदी के उत्तर का भाग तथा दृषद वटी जो की हस्तिनापुर के उत्तर पश्चिम में था। कुरु जंगला कहलाता था यह गुरु जनपद का वन क्षेत्र था जो वर्तमान में पूर्वी पंजाब है।

5) भारुंडा एवं वरुथा वन: यह वन उत्तर भारत में स्थित थे किंतु इन्हें पहचानना कठिन है।

6) नैमिषारण्य: यह वन बलिदान तथा संतो के निवास के वन माने जाते है थे। जिनका विस्तार गोमती नदी के बाएं किनारे पर पाया जाता था । इसे नीमसार के नाम से भी जाना जाता था जो कि वर्तमान लखनऊ से कुछ दूरी पर स्थित थे।

7) सर्वना: रामायण के अनुसार सर्वना अर्थात बांस अथवा बांसुरी के वन हिमालय क्षेत्र में विस्तृत थे।

8) ततकावना: यह वन छोटा नागपुर पठार पर स्थित वन थे, जहां पर घने जंगलों में शेर, चीता,जंगली जानवर और हाथी पाए जाते थे। ततका एक यक्ष स्त्री थी, जो कि इस वन क्षेत्र की शासक मानी जाती थी ।

9) चित्रकूट वन: यह वन शंकरगढ़ पहाड़ी से वर्तमान चित्रकूट तक विस्तृत थे जो कि इलाहाबाद नगर से 60 मील दक्षिण पश्चिम में फैले हुए थे इसमें प्रमुख रूप से आम,जामुन,बिल्व, गोधरा,बांस,आंवला,

मक्खन फल, बेर,नीम इत्यादि के वृक्ष पाए जाते थे। इन घने जंगलों में शेर, चीता, भालू,हिरण तथा हाथी एवं अनेक प्रकार के पक्षी विचरण करते थे।

10) अल्कसित वन: इन वनों के क्षेत्र में सौराष्ट्र का एलेश पहाड़ी से गिरनार पर्वत तक का भाग सम्मिलित था। यहां इतने अधिक घने वन थे की सूर्य का प्रकाश भी धरती पर नहीं पहुंच पाता था इसलिए इनका नाम अलक्षित अर्थात जो दिखाई ना दे, दिया गया।

11) दंडकारण्य: यह क्षेत्र रामायण काल में एक विस्तृत वन क्षेत्र था , जिसका विस्तार चित्रकूट पहाड़ी से वर्तमान बुंदेलखंड तथा कृष्णा नदी तक था।

श्री रामायण के अतिरिक्त अथर्ववेद में भी वनों को अत्यधिक महत्व दिया गया है कई वर्षों का संबंध विभिन्न देवी देवताओं से बतलाया गया है जैसे अशोक वृक्ष भगवान बुद्ध,इंद्र,विष्णु तथा अदिति के रूप में माने गए। पीपल वृक्ष भगवान विष्णु, लक्ष्मी तथा दुर्गा के रूप में माने गए . इसी प्रकार तुलसी भगवान कृष्ण ,विष्णु,जगन्नाथ तथा लक्ष्मी से संबंधित बताई गई . वटवृक्ष ब्रह्मा जी, विष्णु भगवान, भोलेनाथ, कुबेर, कृष्ण तथा यमराज से संबंधित बताया गया। मत्स्य पुराण में एक संदर्भ है की पार्वती देवी वृक्षों के रोपण के बारे में निर्देश देती है तब तब देवता और दिव्य प्राणी उनके पास आते हैं और कहते हैं कि _हे देवी लगभग सभी लोग बच्चे चाहते हैं और जब वह अपने बच्चों को देखते हैं तो उन्हें लगता है कि वह सफल हुए .तो पुत्रों की तरह वृक्ष लगाने और पालने से आप क्या हासिल करती हैं? तब माता पार्वती का उत्तर होता है की जल की कमी वाले क्षेत्र में जो कुंए खोदता है उसे स्वर्ग में तब तक स्थान मिलता है जब तक वहां पानी की बूंदे रहती हैं ।पानी के एक बड़े जलाशय का मूल्य 10 कुओं के बराबर है एक बेटा 10 जलाशयों के समान है और एक पेड़ 10 बेटों के बराबर है (दस पुत्रः समो द्रुमा) यह मेरा मानदंड है और मैं इसकी सुरक्षा के लिए ब्रह्मांड की रक्षा करूंगी[4]।ऋग्वेद की सूक्ति में भी वनों का उल्लेख मिलता है उसमें लिखा गया है कि यदि हजारों और सैकड़ों साल तक आप फल और जीवन का आनंद लेना चाहते हैं तो वर्षों का व्यवस्थित रोपण कीजिए वृक्ष और मुख्यतः फलों के वृक्ष पवित्र होते हैं और इनको नष्ट करने वालों को महा विपत्ति का सामना करना पड़ता है उदाहरण के लिए रामायण में विपत्ति के समय राक्षस राज रावण कहता है कि मैंने वैशाख के महीने में कोई अंजीर का वृक्ष नहीं काटा फिर यह विपत्ति मेरे सामने क्यों आई।धर्म सूत्रों के साथ-साथ कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी वृक्ष की कटाई की निंदा की गई है।कौटिल्य वृक्षों, वनों और जंगलों को नष्ट करने वालों के लिए दंड के विभिन्न स्तरों का निर्धारण करते हैं[5]।

निष्कर्ष - उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत का प्राचीन साहित्य यथा श्री वाल्मीकि रामायण तथा अन्य हिंदू पुराणों ,ग्रंथों, वेदों इत्यादि में वनों का वितरण, उनकी सुरक्षा तथा उनके महत्व पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।पर्यावरण का एक प्रमुख अवयव वन और वृक्ष हैं, जिनकी सुरक्षा आवश्यक

है।प्राचीन भारतीय ग्रंथों में वृक्षों की कटाई पर कठोर अर्थ दंड एवं अन्य दंड दिया जाते थे। किंतु वर्तमान में शिथिल प्रणाली से वनों की अंधाधुंध कटाई, निर्वनीकरण के परिणाम वैश्विक स्तर पर सर्वत्र दिखाई दे रहें है।समय रहते सचेत होना होगा वरना गंभीर पर्यावरणीय समस्याओं का सामना संपूर्ण मानव जाति को करना होगा।

संदर्भ -

1. Lutegendorf,P. 2001: "City, Forest and Cosmos: Ecological Perspectives from the Sanskrit epics". Hinduism and Ecology ed.Christopher Chapple, Key and Tucker Mary Evelyn. pp 276 - 278, oxford University Press

2. Roy. Mira 2005 : Environment and Ecology in the Ramayana, Ind.Jl.Hist.Sci. Vol.40, No.1, pp 9-29

3. Shukla, R.K.2003: The Geography of the Ramayana, Koshal Book Depot, Delhi pp 74 - 77

4. मत्स्य पुराणम, अध्याय 154, 506_ 512 नारायण, 2001 से लिया गया।

5. कौटिल्य अर्थशास्त्र, नारायण, 2001 से लिया गया

भारतीय ज्ञान परंपरा के विविध संदर्भ में भारतीय परंपरागत रसोईघर की भूमिका -एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ कविता अग्रवाल
प्राध्यापक अर्थशास्त्र
श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय इंदौर

शोध सारांश-
भारतीय ज्ञान परंपरा के अनुसार हमारे चिंतन की कई धाराएं हैं ।प्राचीन ज्ञान परंपरा के निर्वहन में भारतीय रसोई एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती चली आ रही है ।मनुष्य का जीवन आहार पर टिका है। रसोई घर में आहार को संस्कारित करना आरंभ किया गया । विज्ञान की प्रगति हर युग की आवश्यकता है, किंतु इसमें दूरदर्शिता और मानव कल्याण का भाव सर्वोपरि होना चाहिए। भारत में रसोईघर एक मंदिर की तरह है, जहां सात्विकता ,शुद्धता, आचरण नियम ,धर्म ,स्वास्थ्य ,स्वच्छता एवं पवित्रता का विशेष पालन किया जाता रहा है ।ऐसे में यदि हम प्राचीन ज्ञान परंपरा की इस आदर्श परंपरा को समझते हैं ,तो देश में अस्पतालों की संख्या आधे से भी काम हो जाएगी और हम भारतीय शुद्ध सात्विक आहार के साथ-साथ अच्छा स्वास्थ्य भी प्राप्त कर पाएंगे
वर्तमान परिपेक्ष्य में पारंपरिक रसोई की उपयोगिता को विश्व पटल पर रखना प्रासंगिक है ।आदर्श आहार -आदर्श प्रक्रिया से बनाया जाए तो आधुनिक संदर्भ में परंपरागत रसोईघर मानव के मूल विकास के लिए आवश्यक है, क्योंकि यहां आदर्श आहार आदर्श प्रक्रिया द्वारा बनाया जाता है

शब्द कुंजी-ज्ञान परंपरा ,रसोईघर ,मानव कल्याण ,आदर्श आहार ,स्वास्थ्य एवं मूल विकास।

अध्ययन की प्रासंगिकता:-आधुनिक भारतीय समाज ने आधुनिकता के नाम पर भारतीय परंपरागत रसोई को बदल दिया है, इसलिए आज देश के समक्ष मानवीय स्वास्थ्य एक बड़ा संकट बन खड़ा हुआ है। बदलता रसोई घर, बदलता खानपान मानव जीवन के लिए अभिशाप बन गया है।

असल में समस्या मानव कल्याण के निहितार्थ हैं, जिसके लिए परंपरागत ज्ञान परंपरा का पालन उपयुक्त आधार है। इस संदर्भ में यह अध्ययन पूर्ण रूप से प्रासंगिक है।

अध्ययन का उद्देश्य:-

वस्तुत परंपरागत ज्ञान की बात कथित आधुनिकता की बातें करने वाले विद्वानों को हजम ही नहीं होती, और इसी आधुनिकता की होड़ में मानव समुदाय की स्वास्थ्य संबंधी पीड़ा से रूबरू होने की जहमत कोई उठाना ही नहीं चाहता। भारतीय रसोई का इतिहास वैदिक काल से भी पुराना है तथापि ये आज हाशिये पर है। वर्तमान समय में समाज में मानवीय मूल्यो की, मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की स्थिति काफी दयनीय है। परंपरागत भारतीय

ज्ञान की इस कड़ी को समाज की मुख्य धारा में लाने का प्रयास नितांत आवश्यक ही नहीं वरन नैतिक दायित्व भी है। जीवन जीने और मनुष्य होने का अधिकार दिलाने की दिशा में हमें भारतीय रसोई की भूमिका कोपूर्नस्थापित करना ही होगा। उक्त शोध इसी उद्देश्य पर आधारित है।

अध्ययन सामग्री एवं विचार विमर्श:-

भारतीय ज्ञान परंपराओं को प्रोत्साहन देना एवं भावी पीढ़ी को इस अमूल्य धरोहर से अवगत कराना राष्ट्रीय शिक्षा नीति की प्रमुख विशेषता है ।राष्ट्रीय शिक्षा नीति में वर्षों से उपेक्षित भारतीय ज्ञान परंपराओं को नए सिरे से सहजने की कोशिश की गई है

भारतीय दर्शन एवं भारतीय ज्ञान परंपरा 'वसुधैव कुटुंबकम 'की विचारधारा पर आधारित है ।प्रकृति और मनुष्य के सकारात्मक संबंधो मे सामन्जस्य रखते हुए सतत विकास करना ही भारतीय दर्शन की मूल विशेषता रही है ।'सर्वे भवंतु सुखिन:', साईं इतना दीजिए ,जामे कुटुम्ब समाय ।मैं भी भूखा ना रहूं ,साधु न भूखा जाए। शाकाहार , सात्विक आहार आदि अनगिनत उदाहरण है जिनके आधार पर यह प्रतिस्थापित होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा सही मायने में मनुष्य के सर्वांगीण विकास की मूल अवधारणा को समाहित किए हुए हैं ।दया, प्रेम ,क्षमा ,त्याग ,सत्य, अहिंसा ,शांति ,सद्भावना ,दान ,करुणा , दया ,शिष्टाचार , एवं समर्पण जैसे शाश्वत जीवन मूल्य सदियों से हमारे जीवन के आधार रहे हैं। हमारी मूल्य परक ज्ञान परंपरा अधिकारों की तुलना में कर्तव्य बोध पर विशेष बल देती है ।अतः भारतीय ज्ञान परंपरा का अध्ययन एवं आचरण इस खोए हुए कर्तव्यबोध एवं उत्तरदायित्व की भावनाओं को जागृत करने का सशक्त माध्यम है।

भारतीय परंपरागत रसोईघर अदृश्य ज्ञान की धरोहर एवं आचरण की सशक्त इकाई के रूप में भारतीय दर्शन का प्रतिनिधित्व करती है।

विश्लेषण एवं प्रस्तुतीकरण:-

भारतीय परंपरागत रसोई ही क्यों? भारतीय परंपरागत रसोई घर किसी भी घर का दिल होता है। यह यहां सामाजिक मेलजोल के लिएचुंबक है। भारतीय दर्शन के सभी पहलू हमें या देखने को मिल जाते हैं।

श्रीमद् भागवत गीता में लिखा है -"युक्ताहा विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु " । युक्तस्वपाव बोधस्य योगो भवतिदु:ख। आहार विहार ठीक रहा तो केवल शारीरिक कि नहीं वरन मानसिक स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा। अत:कहा जा सकता है कि रसोई घर समग्र स्वास्थ्य को बेहतर बनाता है।

भारतीय रसोई की संरचना:-

भारतीय रसोई कच्ची और नीचे बैठकर भोजन निर्माण करने की होती है। इसी प्रकार नीचे पालथी मारकर बैठना और भोजन करना इसका अहम हिस्सा होता है । इस प्रक्रिया में हमारी पाचन क्रिया सुचारू रूप से कार्य करने लगती है।

आधुनिक रसोई घर में भोजन निर्माण की प्रक्रिया खड़े होकर एवं भोजन कुर्सी पर बैठकर करते हैं। यह हमारे शारीरिक लचीलेपन को कम कर पाचन तंत्र पर बुरा प्रभाव डालती है।

शुद्धता एवं स्वच्छता:-

रसोई घर में सभी का प्रवेश निषेध था। परंपरागत रसोईघर में घर के सदस्य ही रसोई घर में प्रवेश कर सकते थे एवं शुद्धता और स्वच्छता का कड़ाई से पालन करते थे। स्नान करके ही रसोई घर में प्रवेश किया जाता था। चप्पल जूते पूर्णत: निषेध थे।

आधुनिक परिपेक्ष में ऐसा तो कुछ होता ही नहीं है फिर शुद्धता एवं स्वच्छता कैसे हो सकती है।

बर्तनों के प्रकार:-

परंपरागत रसोई में उपयोग होने वाले बर्तन मिट्टी के होते थे। जिनमें पोषक तत्व 100% तक सुरक्षित रहते थे। पानी के लिए मिट्टी के घड़े का उपयोग होता था। मिट्टी के बर्तनों का उपयोग स्वास्थ्य की दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त होता था।

सभ्यताओं के विकास के साथ-साथ मिट्टी के बर्तनों का स्थान धातु के बर्तनों में ले लिया। उनमें प्रमुख रूप से तांबे ,कांसे, पीतल एवं लोहे के बर्तन थे। राजघरानो में सोने चांदी के बर्तनों के उपयोग का भी वर्णन मिलता है। कांसे के बर्तन के उपयोग से बुद्धि तेज एवं रक्त में शुद्धता आती है।तांबे के बर्तन में रखा पानी रक्त को शुद्ध करता है, एवं पेट संबंधी बीमारियों को समाप्त करता है। पीतल के बर्तन में भोजन बनाने से भोजन के केवल 7% पोषक तत्व ही नष्ट होते हैं और कफ वायु दोष नहीं होता। लोहे के बर्तन में खाने से शरीर की शक्ति बढ़ती है। इन बर्तनों के उपयोग के साथ-साथ, कहां इनका प्रयोग नहीं करना है यह भी बताया गया है । एल्युमिनियम के बर्तनों में बोक्साइट होता है, जो भोजन में से लोह तत्व और कैल्शियम को सोख लेता है इससे शरीर को गंभीर परिणाम भुगतने पडते हैं। अतः इन बर्तनों का प्रयोग वर्जित माना गया है।

वर्तमान में उपरोक्त वर्णित बर्तनों का प्रयोग चलन से बाहर हो गया है केवल स्टील कांच के बर्तन वर्तमान में प्रयोग में है।

भारतीय मसाले:-भारतीय मसाले में औषधीय गुण होते हैं। भोज्य पदार्थों मे मसालो का उपयोग उनकी पौष्टिकता ,स्वाद वृद्धि एवं उन्हें सुपाच्य बनाते हैं। मसालो में औषधीय गुण स्वास्थ्य की दृष्टि से भोज्य पदार्थों से होने वाले नुकसान को कम करने का काम करते हैं । मसाले के सही उपयोग की जानकारी रसोई घर को संभालने वाली सभी महिलाओं को पीढ़ी दर पीढ़ी बड़े ही आराम से हस्तांतरित होती आ रही है, उन्हें इसके लिए किसी पुस्तक या पाठशाला की आवश्यकता नहीं होती थी। उदाहरण के लिए दालों में हींग का उपयोग, चिकने खाद्य पदार्थों में अजवाइन का उपयोग ,मेथी दाना सौंफ,कलौंजी, काला नमक का प्रयोग भोजन को हानिकारक बनाते हैं।

इन सबके परे आधुनिक आधुनिक रसोई में तैयार मसाले का मिक्सचर उपयोग में लाया जाता है ,नई पीढ़ी को यह भी नहीं पता कि इन मसालो की क्या उपयोगिता है और इनका नाम क्या है।

धर्म ,आचरण, सात्विकता का अनुसरण:-

पवित्रता, शाकाहार ,शांत वातावरण, प्रेम- सौहार्द ,के माहौल में भोजन का बनाना एवं भोजन करना, भगवान को अर्पित करके ही भोजन करना, भोजन करते समय मंत्र का उपयोग, भोजन प्रारंभ करने के पूर्व गाय- कुत्ते का हिस्सा निकालना यह सभी विशुद्ध रूप से मानव को मानव बनाने की कला का अहम् हिस्सा रहा है।

वर्तमान आधुनिक रसोईघर प्रयोगात्मक रसोई घर में बदल चुकी है जहां सिर्फ आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर भोजन का निर्माण बाहरी लोगों के द्वारा करवाया जाता है।

पहल एवं प्रयास :-

-प्राचीन रसोई घर में आदतों के पीछे छुपे हुए विज्ञान के अनदेखी को रोकना जरूरी है।

-मनुष्य को मानसिक और शारीरिक रूप से मजबूत एवं सक्रिय होना चाहिए परंतु दु:ख की बात यह है कि भोजन शैली में बदलाव की वजह से हम में से अधिकांश लोग अपच, एसिडिटी ,कब्ज ,मोटापा आदि समस्याओं का सामना कर रहे हैं,यह सभी आंत की बीमारियां हैं। यह समय है जब हम अपनी जीवन शैली पर विचार करें और भारतीय परंपरागत रसोई से जीवन शैली और अनुष्ठान के पीछे के विज्ञान को गंभीरता से समझे।

-परंपरागत रसोई में शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने वाली छोटी-छोटी आदतों को अपनाने के महत्व पर अपनी ज्ञान और बुद्धि साझा की गई है ,जैसे भोजन में घी का प्रयोग ,हल्दी वाला दूध ,ताजा व समय पर भोजन ,पानी पीने का तरीका आदि इन सभी से हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली मजबूत होती है। भोजन से पहले प्रार्थना करना आदि परंपरागत रसोई से प्राप्त ज्ञान और स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए जीवन हैकिंग विधियां है ,यह ज्ञान परंपराएं हमारे पेट भरने के लिए एक सुखद माहौल बनाते हैं हमें कृतज्ञता सीखाते हैं मन को शांत रखते हैं और ज्यादा खाने से रोकते हैं।

-भारतीय रसोई में पंच इंद्रियों की भाषा अच्छी आदतों की अवधारणा, विनम्र एवं शक्तिशाली सिद्धांत पर आधारित है। यह सब चेतनता का अभ्यास है और बिना एहसास के ध्यान की अवस्था है।-प्राचीन भारतीय रसोई की परंपरा पीढ़ीयो से चली आ रही बुद्धिमता है, आज भी उनकी प्रासंगिकता है क्योंकि इन्हें मनुष्य के लिए माइंडफूलनेस के साथ डिजाइन किया गया है।

-पृथ्वी से जुड़े रहने का एक तरीका हमेशा फर्श पर बैठकर खाना खाना रहा है।

-फर्श पर बैठकर भोजन करने की परंपरा मे जिस मुद्रा में बैठते हैं वह शरीर को शांत कर पेट को पाचन के लिए तैयार करने का संकेत मस्तिष्क को भेजती है , देखिये जिससे पाचन क्रिया आसान हो जाती है और आगे झुकने के कारण हम कभी भी अधिक भोजन नहीं कर पाते।

-इस आधुनिक युग में हमारे आधुनिक रसोई परंपरागत रसोई की गौरवशाली ज्ञान परंपरा को कैसे अपने तथा नए परिपेक्ष में परंपरागत ज्ञान को कैसे जोड़े इसका विचार आवश्यक है।

रसोई से हमारे जीवन का अस्तित्व है, अतः वर्तमान रसोई में प्राचीन ज्ञान परंपरा को सहेजना ,भंडारण करना अति आवश्यक है।

निष्कर्ष:-

कार्यात्मक और आधुनिक रसोई का होना वास्तव में एक आशीर्वाद है, यह जीवन की भाग दौड़ के बीच भोजन बनाने की प्रक्रिया को आनंददायक गतिविधि में बदल बदलने में मदद करता है। परंतु आपकी रसोई आपकी रचना होनी चाहिए जो कि समग्र स्वास्थ्य को बेहतर बना सके एवं सकारात्मक का संचार कर सके। रसोई शरीर मन और आत्मा को ईंधन देती है तथा दिन -प्रतिदिन के जीवन का केंद्र है।

अंत में -रसोई घर तो हर एक घर में होता ही है परंतु उसे वैज्ञानिक रूप से स्वीकार करने की आवश्यकता है पारंपरिक रसोई का वैज्ञानिक आधार पर कैसे उपयोग हो इसका पूरा वर्णन आयुर्वेद के भव प्रकाष नामक ग्रंथ में दिया गया है जिसमें रसोई घर की बहुत सी ऐसी बातें बताई गई है जिसका अनुसरण करने से हमारी भारतीय रसोई मानव जीवन के लिए अनमोल उपहार हो सकती है। भारतीय परंपरागत रसोई नि: संदेह भारतीय ज्ञान परंपरा की अमूल्य धरोहर है।

संदर्भ:-

१-जैक्सन, पी (२०१०) खाद्य कहानियां: चिंता के युग में उपभोग

२-एमजीबीओजी, आई (२०१०) पारंपरिक ज्ञान की मुक्ति और पश्चिमी शैली के बौद्धिक संपदा अधिकार का प्रभुत्व

३-मिलबर्न, एम.पी.(२००४) स्वदेशी पोषण

४-एन .ई .पी .(2020) एम.एच.आर.डी .

नई दिल्ली

५-का प्रोफेसर गीता (२०२०) भारतीय ज्ञान परंपरा की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रासंगिकता

६-शर्मा सपना (२०२२) इंडियन नॉलेज ट्रेडीशन एंड रिसर्च

७ कुमार रवि (२०२१) भारतीय परंपरागत रसोई

८-दैनिक भास्कर-रस रंग में माइथॉलाजी रसोईघर, मई २०२३

प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा और इतिहास

श्री मयंक जैन

साहयक प्रध्यापक- पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग

मंगलायतन यूनिवर्सिटी अलीगढ

सारांश

हमारी प्राचीन ज्ञान परंपरा ने व्यक्ति के सर्वांगीण विकास पर ध्यान दिया है, और शिक्षा का स्वरूप व्यावहारिक जीवन के लिए सहायक है। संस्कृत भाषा में संपूर्ण वैदिक वाग्मय, जैसे रामायण, महाभारत, पुराण स्मृति ग्रंथ, दर्शन, धर्म ग्रंथ, काव्य, नाटक, व्याकरण और ज्योतिष शास्त्र, उपलब्ध हैं और उनकी महिमा को बढ़ाते हैं, जो भारतीय सभ्यता और संस्कृति को पूर्णतः सिद्ध करता है। संस्कारवान समाज सुसंस्कृत ज्ञान से बनता है। संस्कारों से कायिक, वाचिक और मानसिक शुद्धि के साथ-साथ पर्यावरण भी शुद्ध होता है।हमारी शिक्षा प्रणाली को बदलते सामाजिक परिवेश और भारतीय मूल्यों के अनुकूल बनाना आवश्यक है। भारतीय प्राचीन ज्ञान परंपरा को शामिल करने के बिना यह समावेशी व्यवस्था असफल होगी। हम आधुनिकता की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं। विज्ञान परंपरा और हमारी संस्कृति में निहित ज्ञान है। इस अंधानुकरण में हमारी वही स्थिति हो चुकी है कि उपनिषदों में कहा गया है कि अगर रास्ता दिखाने वाला भी दृष्टिहीन हो तो लक्ष्य को प्राप्त करना कठिन होगा। माना जाना चाहिए कि भारतवर्ष एक ऐसी ज्ञानभूमि है जो आज के विज्ञान से भी परे है। जो समस्त ज्ञान प्रेमियों के लिए अध्ययन का विषय है। भारत विश्व को अब देना चाहिए

मुख्य शब्दः- ज्ञान परंपरा, संस्कृति, सांस्कृतिक मूल्य।

प्रस्तावनाः-:

भारत की प्राचीन ज्ञान परंपराएँ और संस्कृति ने मानवता को बढ़ावा दिया है। पुराणों ने ज्ञान को अतुलनीय माना है। भारत में कई देशों के शिक्षार्थी तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभी, उज्जयिनी, काशी और अन्य विश्व प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने आते थे। सब कुछ प्राचीन भारतीय ज्ञान विज्ञान की श्रेष्ठ परंपरा से दिखाई देगा। संस्कृत में ज्ञान विज्ञान एक महत्वपूर्ण श्रृंखला है, जो वर्तमान वैज्ञानिक जगत के लिए एक रहस्यमय विषय है। आधुनिक विज्ञान आज समृद्ध हो रहा है, लेकिन इसके नकारात्मक और बुरे प्रभाव भी सामने आ रहे हैं।

विज्ञान हर युग में प्रगति करता है, लेकिन इसमें दूरदर्शिता की जरूरत है विभिन्न विश्वविद्यालयों की स्थापना और शिक्षा व्यवस्था से स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा वैदिक, उपनिषद और बौद्ध काल में भी रही है। लेकिन पिछले 200 से 300 वर्षों में यह लुप्त हो गया है। इसे राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में भी उचित रूप से प्रतिबिंबित करना चाहिए।

शोध का उद्देश्य-

1. प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा को आज के भारत के संदर्भ में उपयुक्त ठहराना।
2. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की योजना में पुरानी ज्ञान परंपरा का महत्व दिखाना।

परिकल्पना-

1 मानवता प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं से प्रेरित होगी।

2. प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा का खोखला चित्रण होगा।

भारतीय ज्ञान परंपरा की गौरवमयी परंपरा

—भारतीय ज्ञान परंपरा एक विशिष्ट ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है, जिसमें विज्ञान और ज्ञान, लौकिक और पारलौकिक, कर्म और धर्म, भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय है। हॉकर ने त्रग्वेद काल से ही जीवन के नैतिक, भौतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक मूल्यों पर जोर दिया, जिनमें विनम्रता, सत्यता, अनुशासन, आत्मनिर्भरता और सभी के लिए सम्मान शामिल थे। वेदों ने विद्या को मनुष्य की श्रेष्ठता का आधार बताया। शिक्षा प्रणाली ने शारीरिक विकास और सीखने दोनों पर ध्यान दिया। बंधनों से मुक्त करने का काम है। और विद्या मुक्ति का मार्ग है। इसके अलावा, सभी कार्य निपुणता देते हैं। शिक्षा के इस विचार को भारत की परंपरा में अंगीकृत करके विश्वविद्यालयों और गुरुकुलों में इसी तरह की शिक्षा दी जाती थी। घर, मंदिर, पाठशाला तथा गुरुकुल में पारंपरिक स्वदेशी शिक्षा दी गई।

समानता को प्राचीन ज्ञान, परंपरा और संस्कृति ने बढ़ावा दिया। पुराण में ज्ञान अतुलनीय था। यदि कोई ऋषि या तपस्वी नहीं है, तो वह मंत्रों का वास्तविक ज्ञान नहीं जान सकता, जैसा कि आचार्य यारक ने निरुक्त में कहा है (निरुक्त 13.12)। अतः आर्ष प्रणीत सिद्धांतों व सुत्रों को समझने के लिए उन्ही के अनुरूप चिंतन मनन करना होगा, जैसे पूर्व को जानने के लिए पूर्व की ओर ही मन करना होता है।

वैज्ञानिक और तार्किक सोच का परिणाम:

प्राचीन भारतीय सनातन ज्ञान परंपरा बहुत समृद्ध थी, और इसका उद्देश्य धर्म अर्थ का मोक्ष को समाहित करते हुए व्यक्ति के पूरे व्यक्तित्व को विकसित करना था। जब दुनिया अज्ञान रूपी अंधकार में फंस गई, तब भारत के मनीषी उच्चतम ज्ञान का प्रसार करके सभी को पशुता से मुक्त करके श्रेष्ठ संस्कारों से युक्त करते थे।

ऋग्वेद 10.191.2 कहता है, "संगच्छध्यं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम देवाभागं यथा पूर्वे, सजनानां उपासते।" एक साथ चलने, एक स्वर में बोलने और एक दूसरे के मन को जानने वाले समाज ही अपने युग को बेहतर बनाने की क्षमता रखता है और ऐसे युग में जीने वाले अपने लिए बेहतर वर्तमान और आने वाली पीढियों के लिएऋग्वेद का यह मंत्र हमें ऐसा ही सनातन विचार देगा।

<u>भारत की ज्ञान परंपरा का भू-सांस्कृतिक और सभ्यतागत संदर्भ:</u>

भारत की सभ्यता और संस्कृति ने देश की प्राचीनता को सिद्ध किया है। इस दृष्टिकोण में भारत की भौगोलिक जानकारी भी आवश्यक है। और इससे भारत की ज्ञान परंपरा जुड़ी हुई है। सभी मुद्दे परस्पर संबंधित हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल में विद्यमान भू-सांस्कृतिक और सभ्यतागत विशेषताओं का पता लगाने और पहचानने के लिए हमें सबसे पुराने मौखिक या लिखित पाठ्य संदर्भ खोजना होगा। भारत ने विभाजन से पहले उत्तर पश्चिम में अफगानिस्तान और इरान के साथ अपनी अल्पकालीन भौगोलिक सीमाएँ साझा की थीं। लेकिन आज की तरह प्राचीन काल में इन राजनीतिक सीमाओं को रेखांकित नहीं किया गया था। प्रारंभ में कुछ भौगोलिक कारणों से भू दुश्य अलग थे, जैसे पहाड़, नदी, रेगिस्तान या जंगल। यही कारण है कि कुछ भौगोलिक सीमाओं के भीतर रहने वाले लोगों की जीवन शैली, व्यवहार और सोचने के तरीके सामान्य और अलग हो गए।

<u>भारत की प्राचीन ज्ञान परंपरा और इतिहास:</u>

हमारा देश सदियों से मानवीय मूल्यों और विशिष्ट वैज्ञानिक परंपराओं का घर है। भारत की संस्कृति ने दुनिया को एक अलग देश के रूप में नहीं देखा है।"अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतषाम् उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्" - यह कहते हैं।भारत महाउपनिषद की इस सिद्धत पर विश्व को एक परिवार मानता है। यह अलग बात है किपाश्चात्य सभ्यता की आपाधापी से हम भी भूल गए कि यह सभ्यता भौतिक वाद पर आधारित थी, न कि आध्यात्मिकता और ज्ञान पर। १९०० के उत्तरार्ध से, पश्चिमी देशों ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति को समझने और अपनाने पर जोर दिया है। वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों और स्थानीय जीवन के बारे में जानने के लिए शोध संस्थाओं की स्थापना करने लगे हैं। आज भी विश्व भारत

की परंपराओं को मानता है। भारत के प्राचीन मूल्यों को भी हमें और हमारी पीढ़ियों को महत्व देना होगा। इसके लिए आंतरिक ज्ञान, गुण, शक्ति और आदशों को सही रूप से पहचानना होगा।

यह ज्ञान प्रणाली पुरानी है। इस भूमि से स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग निकलता है, इसलिए देवता, सुर, असुर सभी तरसते हैं। अक्षय ज्ञान परंपरा मानना निश्चित रूप से सही होगा।

भारतीय ज्ञान परंपरा की आज की भूमिका: भारत महान है। यह धरती ज्ञान की निरंतर धारा से भर गई है। पुरातन भारत की ज्ञान परंपरा बहुत समृद्ध है। वर्तमान युग में प्रचलित भारतीय ज्ञान और विदेशों से आ रही तथाकथित नवीन खोज, हमारे ग्रन्थों में उल्लिखित हैं, भारतीय ज्ञान परंपरा के समृद्ध होने का प्रमाण हैं। बीते कुछ शताब्दियों से इस धरती को ऐसा महसूस कराया जाता रहा है जैसे ज्ञान कभी यहां नहीं फैला है। हमारी सैकड़ों पीढ़ियों ने सहस्त्र वर्षों की दासता में इस ज्ञान को संजोए रखा। किंतु यह समय के साथ बेकार हो गया। भारत के ज्ञान वृक्ष की छाया में पनप रहे विश्व को बताने का समय है कि भारत का गुरुत्य अभी भी कायम है। भारत का ज्ञान गंगा जल से मिलता-जुलता है। जो शुद्ध और निरंतर है। मैकाले के मानस पुत्र प्रश्न उठाते हैं कि भारत ने विश्व को क्या दिया है और दिखाते हैं कि सब कुछ भारत को पाश्चात्य देशों ने दिया है। भारत ने विज्ञान के अनेक आयामदिये और विश्व को ज्ञान प्रणाली दी। भारतीय ज्ञान व्यवस्था पर विचार करने का समय है। इसे समाज तक पहुंचाने के लिए पुरुषार्थ की जरूरत है। यह केवल पुराना ज्ञान नहीं है; यह बुद्धि, आत्मरक्षा और देश की गरिमा के बारे में है। यह भी याद रखना चाहिए कि भारतीय ज्ञान परंपरा सत्य को मानती है। आजकल, डिप्रेशन, तनाव, इन्जाइटी और मानसिक ट्रामा जैसे शब्दों का प्रयोग बहुत हो गया है। वर्तमान युवा पीढ़ी ने पाश्चात्य जीवनशैली को अपनाने के कारण इन शब्दों को अपने जीवन में शामिल कर लिया है, लेकिन पुरातन भारत में ऐसी मनोवृत्ति नहीं थी, इसलिए भारतीय दर्शन रहा। अब हम सभी का कर्तव्य है कि भारत वर्ष की अनमोल धरोहर, ज्ञान को संग्रहित करके रखें, ताकि आने वाली पीढ़ी भारत को हीन न देखकर गौरवपूर्ण देखे।

वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्सटीन ने कहा, "हम भारतीयों के बहुत ऋणी हैं जिन्होंने हमें गिनना सिखाया।", जिसके बिना कोई महत्वपूर्ण वैज्ञानिक खोज नहीं की जा सकती थी। पश्चिमी वैज्ञानिक के कथन से स्पष्ट होता है कि भारत वर्ष का योगदान सदैव मूल्यवान रहा है और आज भी मूल्यवान रहेगा।

निष्कर्ष:

विभिन्न मानव कल्याणकारी क्षेत्रों, जैसे दर्शन, ध्वन्यात्मक अनुष्ठान, व्याकरण, खगोलविज्ञान, अर्थशास्त्र, सांख्य सिद्धांत, तर्क, जीवन विज्ञान, आयुर्वेद, ज्योतिष और संगीत, में प्राचीन भारत ने कीर्तिमान स्थापित करके मानव जाति की उन्नति में अत्यधिक योगदान दिया है।
प्राचीन भारतीयों द्वारा अविस्कृत सिद्धांतों और तकनीकीयों ने आधुनिक विज्ञान और पौद्योगिकी के मूल को मजबूत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वर्तमान में कुछ इन नवीन योगदानों को अपनाया जा रहा है, लेकिन कुछ अभी भी अज्ञात है।

हमारे भारत वर्ष ने विश्व को कई तरह से लाभ दिया है। भारत ने ही बौद्ध, जैन और सिक्ख धर्म विश्व भर में फैलाए। भारत ने पूरी दुनिया को गुरु-शिष्य परंपरा दी, जो वर्षों तक चलती रही, जिससे लोगों ने पुराने ज्ञान को अपनाया और उससे नया ज्ञान बनाया।

नतीजतन, आज की दुनिया में भी भारतीय ज्ञान धारा लागू होती है, जो तनाव प्रबंधन स्थिरता जैसे मुद्दों से निपटने के लिए व्यावहारिक सुझाव देती है। यह ज्ञान का एक बड़ा भंडार है। इससे लोगों के समुदायों और मानवता को बढ़ाया जा सकता है।
यही कारण है कि विश्व धरोहर की विपुल सम्पदा को न केवल संरक्षित और अगली पीढ़ी के लिए बचाया जाना चाहिए, बल्कि इसे शिक्षा प्रणाली के माध्यम से विकसित और नवीनतम उपयोग में लाया जाना चाहिए।
महान ज्ञान ही एक स्वस्थ समाज को ऊपर ले जाता है। मनुष्य सभी ग्रहों से श्रेष्ठ है। इसलिए श्रेष्ठों का काम भी अच्छा और लाभदायक होना चाहिए।

सन्दर्भ

1. पंडित मधुसुदन ओझा, भारतवर्ष: द इंडियन नरेटिव ऐज टोल्ड इन इन्द्रविजयाह, रूपा, 2017।
2 नीतिशतकम्
3 मनुस्मृति
4 दर्शनकोश, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1980, पृष्ठ 226, ISBN 5-010009072
5 ईशोपनिषद
6 जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ॰ 667
7 सत्यार्थ प्रकाश, प्रकाशन किरण, 2015 ISBN 13:987-8189068783
8 मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, पाणिनी कालीन भारतवर्ष, पृष्ठ २।

भारतीय ज्ञान परंपरा में सांस्कृतिक प्रतीक : तिलक के विशेष संदर्भ में

डॉ संगीता मेहता
आचार्य एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग
श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय,इंदौर,

भारतीय वाङ्मय में प्राचीन इतिहास में तथा कला एवं संस्कृति में प्रतीकों का सम्मानीय और महत्वपूर्ण स्थान है। प्रतीक सर्वकालिक, सार्वभौमिक और सहज सुलभ होते हैं। प्रतीक किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व नहीं करते अपितु वे पूरी संस्कृति से जुड़े हुए हैं। प्रतीक चाहे काव्य में हो या कथा में, मूर्ति में हो या चित्र में ज्ञान के विविध तत्त्वों को समझाने में प्रतीकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है।

भारतीय धर्म और दर्शन में प्रतीकों का प्रयोग बहुलता से हुआ है। अधिकांश प्रतीक मंगल और शुद्धता के सूचक हैं। प्रतीकों हमेशा किसी उद्देश्य को लेकर ही निर्मित होते हैं , वे सार्थक होते हैं। कभी वे सूक्ष्म के द्वारा स्थूल अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं, कहीं स्थूल के द्वारा सूक्ष्म की। एक ही प्रतीक का कहीं सामान्य अर्थ परिलक्षित होता है. कहीं उसके विशेष गूढ़ या उत्कृष्ट अर्थ होते हैं।

प्रतीक का अभिप्राय एवं भेद

व्युत्पत्ति की दृष्टि से प्रति + कन् नि दीर्घ से प्रतीक शब्द का निर्माण हुआ है। जिसके अंग, अवयव आदि अथों के साथ-साथ एक अर्थ "की ओर मुड़ा हुआ" भी है।'1 अमरकोश में प्रतीक का अर्थ है अङ्गप्रतीको अवयवः।2

अभिधान रत्नमाला में प्रतीक को पुल्लिंग वाचक शब्द तथा 'प्रतीयते प्रत्येति वा इति -एक देशः, अङ्ग, अवयवः, अर्थ दिया है।'3

' "प्रकर्षेण तीव्यते गम्यते यस्मात् तत् प्रतीकम् इस व्याख्या के अनुसार प्रकृष्ट अर्थ को प्रदान करने वाला तत्त्व ही प्रतीक कहा जा सकता है। 'प्र' उपसर्ग से उत्कृष्टता का अर्थ निकलता है।4

सांकेतिक शब्द से वस्तु या गुण को व्यक्त कर देना प्रतीक का कार्य है।धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक सभी दृष्टियों से इन प्रतीकों का महत्त्व सर्वमान्य है। ज्ञान के आधार और शुभ संकल्पों से सुखमय व शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करने के उद्देश्य हमारे मनीषियों, चिंतकों, महात्माओं ने हमें अनेक सांस्कृतिक सूत्र के रूप में प्रतीक दिये हैं। ये प्रतीक विद्वानों और मनीषियों के गवेषणा का आधार है

तथा वर्तमान में अध्येताओं की जिज्ञासा का केन्द्र है साथ ही सहृदय अध्येता के लिए मनोविनोद के साथ आत्मनिरीक्षण का प्रेरक माध्यम है।

सृष्टि के उद्गम काल में मानव संकेत, चिह्न आदि का ही सहारा लेता है। 'नाद' को जब तक शब्दों में नहीं बांधा गया, तब तक मानव हाव-भाव से ही मनोभावों को व्यक्त करता था। धीरे-धीरे भाषा का विकास हुआ। स्थूल की उपमा सूक्ष्म से देकर उपमेय को उपमान में प्रतिबिम्बित कर भाषा को पुष्ट किया जाने लगा। सूक्ष्म की अभिव्यक्ति स्थूल के द्वारा करने के लिए प्रतीक का सहारा लिया जाने लगा। उदाहरण के लिए 'पुस्तक ज्ञान का प्रतीक है', 'मन्दिर भक्ति के प्रतीक है', 'निराकार अनंत आकाश ब्रह्म का प्रतीक है' आदि।

भारतीय संस्कृति में अनेक प्रतीक है, जो व्यक्ति और समाज का सर्वांगीण विकास करते हैं। ये प्रतीक सांस्कृतिक धरोहर हैं। उन्हें अपने जीवन में अन्तर्विष्ट करना है। ये प्रतीक अनेक प्रकार के हैं ।जैसे-

1 चिह्न प्रतीक- अक्षराकृतियाँ,ओम्, श्री,स्वस्तिक ,बिन्दु,तिलक आदि।

2 रंग के प्रतीक- श्वेत, काला, लाल, पीला आदि।

3 पदार्थ प्रतीक-शंख, स्वर्ण, पाषाण।

4 प्राणी प्रतीक- गाय, वृषभ, हंस, मयूर।

5 पुष्प प्रतीक- कमल, गुलाब।

6 शस्त्र प्रतीक- चक्र, गदा, त्रिशूल।

7 वाद्य प्रतीक- शंख, डमरू ।

8 वृक्ष प्रतीक- अशोक, पीपल, तुलसी ।

9 वेश प्रतीक- यज्ञोपवीत, माला।

10 संकेत प्रतीक- मुद्रा आदि।

तिलक -

तिलक लगाने की पावन परम्परा भारतीय संस्कृति में प्राचीनकाल से प्रचलित है। हमारे ऋषि-महर्षि, साधु-संत एवं विविध साधक, धर्मानुरागी तथा संस्कारवान् गृहस्थ मस्तक पर चंदन,

केसर, कुंकुम, कस्तुरी, अष्टगंध, भस्म आदि का तिलक लगाकर असीम सुख-शांति और मंगल की अनुभूति करते थे।

पूजन, विधान ,संस्कार आदि अनुष्ठानों में तिलक का विशेष महत्त्व है ।भक्त भी भगवान को तिलक लगाकर अपनी असीम आस्था ,श्रद्धा और भक्ति की अभिव्यक्ति करके आनंद की अनुभूति करता है । राजाओं का राजतिलक उन्हें प्रजा का प्रतिनिधित्व प्रदान कर कर्तव्य निष्ठा का बोध कराता है।रणक्षेत्र में विजय प्राप्ति हेतु माताएँ अपने पुत्र को तथा पत्नी अपने पति को मंगल तिलक लगाती हैं। विजय प्राप्त कर लौटने पर भी तिलक लगाकर स्वागत किया जाता है।

जन्मादि उत्सवों,त्यौहारों, वैवाहिक कार्यक्रम, विजयोल्लास, राजतिलक,समारोहों, स्वागत सत्कार आदि में तिलक लगाने की परम्परा लोकप्रिय है।

महिलाओं के सौभाग्यवती होने का प्रतीक नन्हा सा तिलक (बिंदी) उनके सौंदर्य को द्विगुणित करने में अद्वितीय भूमिका निभाता है। मातृत्व के कवच के रूप में माता अपनी संतान को काला टीका लगाती है।

पवित्र त्यौहार जैसे रक्षाबंधन में बहन अपने भाई की कलाई पर रक्षासूत्र बांधकर तिलक लगाकर दीर्घ जीवन एवं सुख-समृद्धि की कामना कर आत्मीयता का अनुभव करती है।

विभिन्न रंगों के तिलक अनेक भाव अथवा उद्देश्य के प्रतीक हैं। तिलक अनेक प्रकार और आकार

के भी लगाए जाते हैं, जो अलग-अलग कहीं विशिष्ट संप्रदायों के तो कहीं विशिष्ट अर्थ के प्रतीक होते हैं।

श्याम शांतिकरं प्राकृतं रक्तं वैश्यकरं तथा।

श्रीकर पीतमित्याहुः श्वेतं मोक्षकरं शुभम् ।। 5

शांति प्रदान करने वाला रंग काला है, वशीभूत कर शासन करने के इच्छुक को रक्त जैसा लाल रंग, धन प्राप्ति के इच्छुक को पीले रंग का प्रयोग तथा मोक्ष प्राप्त करने के इच्छुक श्वेत वर्ण का तिलक प्रयुक्त करते हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण में कहा गया है -

स्नानं दानं तपो होमो देवतापितृकर्म च।

तत्सर्व निष्फलं याति ललाटे तिलक विना।।

ब्राह्मणास्तिलकं कृत्वा कुर्य्यात्संध्यान्तर्पणम् ।। 6

अर्थात् स्नान, होम, देव और पितृकर्म करते समय यदि तिलक न लगा हो, तो यह सब कार्य निष्फल हो जाते हैं। अतः ब्राह्मण तिलक धारण करने के बाद ही संध्या, तर्पण आदि संपन्न करें।

स्कंदपुराण में तिलक धारण करने की विधि और फल बताया है।यथा-

अनामिका शांतिदा प्रोक्ता मध्यमायुष्करी भवेत् ।

अनुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्ता तर्जनी मोक्षदायिनी ।।

अर्थात् अनामिका से तिलक करने से शांति, मध्यमा से आयु, अंगूठे से स्वास्थ्य और तर्जनी से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में भी तिलक की अत्यधिक महत्ता है। माथे पर तिलक लगाने से मस्तिष्क की क्रिया शक्ति जागृत होती है, जो पूरे शरीर के लिए लाभप्रद होती है। मस्तिष्क असंख्य कोशिकाओं से बना हुआ होता है जो सारे शरीर से आने वाले संवेगों को ग्रहण कर शरीर के अन्य अंगों तक पहुंचाता है ।सभी कोशिकाओं का केंद्र बिंदु मस्तिष्क ही है।

स्मरण शक्ति, प्रतिभा, ज्ञान आदि मस्तिष्क में ही रहते हैं। जिन पर तिलक का अद्भुत प्रभाव पड़ता है। व्यक्तित्व के विकास तथा कृतित्व को द्विगुणित करने में भी तिलक का महत्वपूर्ण स्थान है।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार तिलक लगाने से ग्रहों की शांति होती

तिलक लगाने से एक ऐसी सात्त्विक आभा प्रस्फुटित होती है, जो व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की ओर व्यक्ति को उन्मुख करती है। यह प्रभाव धीरेधीरे मनुष्य को उस ओर ले जाता है, जहाँ पहुँचकर वह परमानंद की अनुभूति करता है।7

इस प्रकार सौभाग्य, शांति, प्रसन्नता, उल्लास, सौम्यता, शालीनता, विद्वत्ता, आध्यात्मिकता, त्याग, तपस्या आदि का द्योतक है यह प्रतीक तिलक ,इसका हमारी संस्कृति में तथा मानव जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

संदर्भ :-

1. संस्कृत-हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ. 657
2. हलायुध कोश - सरस्वती भवन, वाराणसी (प्रतीक शास्त्र, डॉ. परिपूर्णानंद शर्मा, पृ 3)
3. प्रतीक शास्त्र, डॉ. परिपूर्णानंद शर्मा, पृ. 3
4. शब्दार्थ कोष, 14/4 ,मध्यप्रदेश की जैनकला, मधुलिका वाजपेयी
5 पद्म पुराण, उत्तरखण्ड, 253
6 ब्राह्मपर्व 26
7 भारतीय संस्कृति प्रतीक कोष शोभनाथ प्रभात प्रकाशन दिल्ली पृ 155

Vedic mathematics and National Education Policy : A Comprehensive Analysis

Prashant Thote and Gowri S
Shree Bapana Public school and Phoenix International School

Abstract

The National Education Policy (NEP) 2020 of India aims to transform the educational landscape by fostering holistic development, critical thinking, and innovation among learners. One of the intriguing facets of this policy is the emphasis on integrating traditional knowledge systems with modern education. Vedic Mathematics, a system of mathematical techniques rooted in ancient Indian scriptures, presents itself as a candidate for integration. This research paper explores the potential benefits, challenges, and implementation strategies associated with incorporating Vedic Mathematics into the NEP 2020 framework. By examining existing literature, educational philosophies, and practical considerations, this paper provides insights into how Vedic Mathematics can enrich the educational experience and contribute to achieving the goals set forth in the NEP 2020.

Key words : Vedic Mathematics, Practical application , Mental calculations, Daily calculation and Financial management

Introduction

"Live as if you were to die tomorrow. Learn as if you were to live forever." — **Mahatma Gandhi**

The National Education Policy (NEP) 2020 is a landmark document that envisions a paradigm shift in the Indian education system, focusing on inclusivity, flexibility,

and quality. One of the key principles underlying the NEP 2020 is the integration of traditional knowledge systems with contemporary education to provide a well-rounded learning experience. Vedic Mathematics, with its roots in ancient Indian texts like the Vedas, offers a unique approach to mathematical problem-solving that aligns with the holistic goals of the NEP 2020. This paper explores the potential synergies between Vedic Mathematics and the NEP 2020, examining the benefits, challenges, and implementation strategies associated with their integration.

Benefits of Integration of Vedic Mathematics ty

Holistic Development: Vedic Mathematics encompasses a diverse range of mathematical techniques that stimulate holistic brain development. By engaging both hemispheres of the brain through visual, auditory, and kinesthetic learning methods, Vedic Mathematics promotes cognitive agility and creativity.

Conceptual Clarity: The sutras (aphorisms) of Vedic Mathematics provide concise and elegant methods for solving mathematical problems. These sutras elucidate underlying mathematical concepts in a clear and intuitive manner, fostering deeper understanding and conceptual clarity among students.

Mental Calculation Skills: Vedic Mathematics emphasizes mental calculation techniques that enable students to perform complex calculations swiftly and accurately. By honing mental arithmetic skills, students develop computational fluency and confidence in tackling mathematical challenges.

Cross-curricular Applications: The principles of Vedic Mathematics extend beyond traditional arithmetic and algebra, finding applications in diverse fields such as geometry, calculus, and even computer science. Integrating Vedic Mathematics into the curriculum facilitates interdisciplinary learning and promotes the application of mathematical concepts in real-world context

Challenges and Consideration

Curriculum Alignment: Integrating Vedic Mathematics into the existing curriculum requires careful alignment with the learning objectives and standards prescribed by the NEP 2020. Balancing the inclusion of Vedic Mathematics with other mathematical pedagogies poses a challenge in curriculum design and implementation

Teacher Training: Effective implementation of Vedic Mathematics necessitates comprehensive teacher training programs to familiarize educators with the principles and techniques involved. Ensuring that teachers possess the requisite

skills and pedagogical strategies to teach Vedic Mathematics effectively is essential for its successful integration

Pedagogical Adaptation: Vedic Mathematics employs non-conventional approaches to mathematical problem-solving, which may differ significantly from conventional methods taught in schools. Adapting pedagogical strategies to accommodate the principles of Vedic Mathematics while maintaining coherence with the broader curriculum requires careful planning and resource development.

Assessment and Evaluation: Assessing student learning outcomes in Vedic Mathematics poses challenges in terms of designing appropriate assessment tools that capture both procedural fluency and conceptual understanding. Developing assessment frameworks that align with the holistic goals of the NEP 2020 while reflecting the unique attributes of Vedic Mathematics is imperative .

Implementation Strategies

Curriculum Integration: Integrate Vedic Mathematics modules into the existing mathematics curriculum, ensuring coherence with the learning objectives and progression of concepts outlined in the NEP.

Teacher Professional Development: Provide comprehensive training programs and professional development opportunities for teachers to enhance their proficiency in teaching Vedic Mathematics effectively .

Resource Development: Develop instructional materials, textbooks, and digital resources that elucidate the principles of Vedic Mathematics and facilitate its implementation in classrooms.y

Collaborative Partnerships: Foster collaborations between educational institutions, government agencies, and non-profit organizations to support the integration of Vedic Mathematics through research, resource sharing, and policy advocacy.

Vedic Mathematics, an ancient system of mathematical techniques derived from the Vedas, offers a treasure trove of methods for solving mathematical problems with remarkable ease and efficiency. While its origins lie in ancient Indian texts, the principles of Vedic Mathematics find practical applications in various facets of daily life. This paper delves into the practical relevance of Vedic Mathematics, elucidating how its techniques can streamline everyday tasks, enhance mental agility, and foster a deeper appreciation for the beauty of mathematics.

Vedic Maths activities

The Four Basic Operation

Vedic Mathematics provides elegant methods for performing the four basic arithmetic operations—addition, subtraction, multiplication, and division—through sutras (aphorisms) that encapsulate fundamental mathematical principles. These techniques, such as Nikhilam Sutra for multiplication and Anurupyena Sutra for proportionality, offer efficient alternatives to conventional algorithms, facilitating rapid mental calculation and reducing computational burden in daily tasks like budgeting, shopping, and time management Speed and Accuracy in Calculations One of the hallmarks of Vedic Mathematics is its emphasis on mental calculation techniques that enable practitioners to perform complex computations swiftly and accurately. By leveraging techniques like Ekadhikena Purvena (By one more than the previous one) and Dwandwa Yoga (The addition of alternatives), individuals can expedite calculations involving large numbers, fractions, and percentages, thereby enhancing productivity and decision-making in various professional and personal contexts. Financial Management and Budgeting Vedic Mathematics equips individuals with practical tools for financial management and budgeting, empowering them to make informed financial decisions with confidence and precision. Techniques such as Vertically and Crosswise (Urdhva-Tiryagbhyam) enable quick estimation and calculation of expenses, savings, and investments, facilitating effective budget planning, debt management, and long-term financial planning Time and Resource Optimization In today's fast-paced world, optimizing time and resources is essential for productivity and efficiency. Vedic Mathematics offers strategies for time optimization through techniques like Antyayor Dasake'pi

(By the last digit) and Shesanyankena Charamena (The ultimate and twice the penultimate), which expedite calculations and decision-making processes, thereby saving valuable time and enhancing productivity in tasks ranging from scheduling appointments to managing projects. Educational Enrichment and Problem-Solving Vedic Mathematics enriches educational experiences by fostering creativity, critical thinking, and problem-solving skills among learners. By introducing students to alternative methods of mathematical problem-solving, such as Vinculum (Ekadhikina Purvena) and Paravartya Yojayet (Transpose and adjust), educators can cultivate a deeper understanding of mathematical concepts and promote resilience in tackling complex problems across disciplines. Enhanced Memory and Cognitive AbilitiesEngaging with Vedic Mathematics techniques stimulates cognitive faculties and enhances memory retention, thereby improving overall mental acuity and cognitive abilities. By practicing mental calculation exercises like Ekadhikina Purvena (By one more than the previous one) and Paravartya Yojayet (Transpose and adjust), individuals can sharpen their focus, concentration, and mental agility, leading to improved performance in academic, professional, and personal pursuits. Cultural Preservation and Heritage Beyond its practical applications, Vedic Mathematics serves as a custodian of India's cultural heritage and intellectual legacy, preserving ancient mathematical knowledge for future generations. By studying and practicing Vedic Mathematics, individuals not only gain practical mathematical skills but also develop a deeper appreciation for India's rich cultural heritage and contributions to the field of mathematic

Conclusion

The integration of Vedic Mathematics into the National Education Policy 2020 framework presents a promising opportunity to enrich mathematical education and foster holistic development among learners. By leveraging the insights gleaned from this paper regarding the benefits, challenges, and implementation strategies associated with incorporating Vedic Mathematics, policymakers, educators, and stakeholders can work collaboratively to realize the transformative potential of this ancient knowledge system within the contemporary educational landscape. Embracing the principles of Vedic Mathematics aligns with the ethos of the NEP 2020, advancing the goals of inclusivity, innovation, and excellence in education for generations to common. practical applications of Vedic Mathematics extend far beyond the realm of mathematical theory, permeating various aspects of daily life and enriching experiences through its elegant techniques and profound insights. Whether it's simplifying financial calculations, optimizing time and resources, or fostering cognitive abilities and cultural appreciation, Vedic Mathematics offers a

holistic approach to problem-solving that resonates with the complexities of modern living. By integrating the principles of Vedic Mathematics. into educational curricula and promoting its widespread adoption, we can harness its transformative potential to empower individuals, enhance productivity, and preserve our cultural heritage for generations to come

References

Prashant Thote, Experiential Learning: Inclusive Art Education for Joyful Learning, Review of Research, Vol 8, Issue- 09, June 2019. DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v8.i5.2020.88

Prashant Thote, Experiential Learning: Model for Teaching Science at Grade Nine, Research Magma, Vol-3, Issue -06, August – 2019.

Prashant Thote, An Analysis of Impact of Evidence Based Learning on Academic Achievement of Students, International Journal of Research- Granthaalayah, Vol 8, Issue- 08, August 2020. DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v8.i8.2020.869

Prashant Thote, Experiential Learning: An Analysis of Impact on Academic Achievement Among Students of Grade 12, International Journal of Research-Granthaalayah, Vol 8, Issue- 09, September 2020. DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v8.i9.2020.1337

Prashant Thote, Evidence Based Learning: An Analysis of Impact on Retention of Knowledge, International Journal of Research- Granthaalayah, Vol 8, Issue- 10, October 2020. DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v8.i10.2020.1883

भारतीय ज्ञान परम्परा में मंत्रो का वैज्ञानिक विश्लेषण

डॉ० अंशुल दुबे
असिस्टेंट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग,
तिलक महाविद्यालय, औरैया
ई मेल bhuanshul@gmail.com

सारांश

भारतीय ज्ञान परंपरा की शुरुआत वैदिक साहित्य से ही मानी जाती है। चतुर्विध वेदों में भी ऋग्वेद सबसे प्राचीन वेद है, जिसके 10 मंडलों में विभिन्न सूक्तों के माध्यम से मंत्रों का संकलन प्राप्त होता है। यद्यपि भारतीय मनीषा वेदों को अपौरुषेय मानती है, तथापि उन वेद मंत्रों का व्यावहारिक उपयोग, वैज्ञानिक विश्लेषण एवं वर्तमान वैज्ञानिक तथ्यों के साथ तुलना आदि शोधपरक दृष्टि प्रासंगिक होती जा रही है। अस्तु भारतीय ज्ञान परंपरा में मंत्रों का वैज्ञानिक विश्लेषण इस शोधपत्र के माध्यम से न केवल ऋग्वेद बल्कि यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद के मंत्रों का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए उनकी व्यवहारिक उपयोगिता को रेखांकित करने का प्रयास किया जाएगा। यदि हम वेद के दो भाग कर्मकांड और ज्ञान कांड की दृष्टि से देखें तो मंत्र अर्थात् संहिता भाग और ब्राह्मण भाग कर्मकांड परक साहित्य हैं, तो वहीं आरण्यक एवं उपनिषद् ज्ञान कांड के भाग हैं। मंत्र शब्द की व्युत्पत्ति पर प्रकाश डाला जाए तो व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है **मननात् त्रायते इति मन्त्र:** अर्थात् मनन करने पर जो त्राण दे या रक्षा करे वही मंत्र है। चूंकि वर्तमान में वैज्ञानिक अवधारणा के द्वारा समाज किसी बात की प्रतिपुष्टि करता है अतः इस लेख में मंत्रों के वैज्ञानिक विश्लेषण के विविध आयामों पर चर्चा करते हुए उनके व्यावहारिक स्वरूप को खोजने का प्रयास किया जाएगा।

महत्त्वपूर्ण शब्दावली – मंत्र, ब्राह्मण, ज्ञान मीमांसा, डोपामाइन हार्मोन, प्रज्ञा विवर्धन।

मंत्र ब्राह्मण को सम्मिलित रूप में वेद कहा जाता है । यदि हम वेद के दो भाग कर्मकांड और ज्ञान कांड की दृष्टि से देखें तो मंत्र अर्थात् संहिता भाग और ब्राह्मण भाग कर्मकांड परक साहित्य हैं, तो वहीं आरण्यक एवं उपनिषद् ज्ञान कांड के भाग हैं। मंत्र शब्द की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला जाए तो व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है मननात् त्रायते इति मन्त्र:[i] अर्थात् मनन करने पर जो त्राण दे या रक्षा करे वही मंत्र है। By repetition (mananat) of which, you overcome/protected (trayate) [overcoming or protection from bondage/troubles/cycles of birth and death] is (iti) called Mantra. "**मंत्र वह है जो त्रास से बचाता है**"[ii]

अर्थात् यदि मंत्र शब्द का विच्छेद करें तो "मन" मानव मन का प्रतीक है जो ध्यान या चिंतन करने में सक्षम है और प्रत्यय "त्र" का अर्थ है सुरक्षा, अर्थात् मंत्रों में मन को बाहरी विचारों से बचाने की शक्ति होती है।

वे मंत्र कर्मकांड में देवताओं को उद्देश्य करके द्रव्य त्याग का जो क्रम निर्धारण है वह मंत्रों के द्वारा किया जाता है। मंत्र न केवल कर्मकांड की विभिन्न क्रियायों का क्रम बताते हैं बल्कि किस द्रव्य विशेष का अर्पण किस मंत्र से होना चाहिए यह भी मंत्र के अर्थ से ही स्पष्ट होता है। मंत्र दृष्टा ऋषि न केवल मंत्रों के प्रयोग की चर्चा करते हैं बल्कि किस मंत्र में कौन सी शक्ति निहित है यह भी विचार किया गया है ।

भारतीय ज्ञान परंपरा मंत्रों के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करने के सिद्धांत की पुष्टि करता है । लेकिन ध्यातव्य है कि वे देवता भी मंत्रों के अधीन होते हैं । **दैवाधीनं जगत् सर्वं, मंत्राधीनाश्च देवता** [iii] इसी क्रम में कुछ मंत्र औषधि लाभ आरोग्य लाभ पर केंद्रित हैं । बहुत प्रचलित मंत्र है महामृत्युंजय मंत्र **ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्** [iv] वर्तमान समय में भी मंत्र का जो ध्वन्यात्मक स्वरूप है उसका प्रभाव समाज में स्पष्टतया न केवल मान्य है बल्कि कई बार चिकित्सकों द्वारा असमर्थता व्यक्त किए जाने पर महामृत्युंजय मंत्र जप, पुरश्चरण जप का फल रोगी को आरोग्य प्रदान करने वाला सिद्ध होता है। इसी प्रकार भगवान शिव के ऊपर विभिन्न द्रव्यों के साथ जल के द्वारा किया जाने वाला रुद्राभिषेक विभिन्न फलों की प्राप्ति हेतु बताया गया है। चूंकि वर्तमान में वैज्ञानिक अवधारणा के द्वारा समाज किसी बात की प्रतिपुष्टि करता है अतः इस लेख में मंत्रों के वैज्ञानिक विश्लेषण के विविध आयामों पर चर्चा करते हुए उनके व्यावहारिक स्वरूप को खोजने का प्रयास किया गया।

भारतीय संस्कृति तथा साहित्य मे मंत्रो का महत्त्व अनन्य साधारण है | मंत्र एक ध्वनि, एक शब्द, एक अक्षर या शब्दों का समूह है जिसके दोहराव से शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति होती है। पूरी श्रद्धा और मन की एकाग्रता के साथ अपने आदि देवता को याद करें, तो वह ही विशिष्ट मंत्रों का जप तथा नामस्मरण है।

हमारी वैदिक परंपरा में मंत्रों का अत्यंत पवित्र स्थान है। इन मंत्रों के जप से पवित्र ऊर्जा कंपन उत्पन्न होते हैं। और इन ऊर्जा तरंगों के कारण हमें आध्यात्मिक सुख की अनुभूति होती है। प्रत्येक मंत्र का एक विशिष्ट कौशल होता है। मंत्रों में कुछ भिन्नताएँ होती हैं।

मंत्र :शब्दार्थ -

1. मंत्र कुछ अक्षरों, शब्दों और महान ऋषियों की कृपा से प्राप्त वरदान का एक वैदिक संयोजन है।

2. मंत्र कुछ प्रकार के होते हैं। वैदिक मंत्र, तांत्रिक मंत्र और शाबर मंत्र के अलावा, कुछ बीज मंत्र हैं, कुछ मूल मंत्र हैं, कुछ शांति मंत्र हैं, कुछ गुरु मंत्र हैं। प्रत्येक विशिष्ट परिणाम के लिए एक विशिष्ट मंत्र बनाया गया है।

3. मंत्र के जप से व्यक्ति को शारीरिक, आदि भौतिक, आध्यात्मिक और कई अन्य लाभ मिलते हैं।

4. मंत्र जप के कुछ नियम होते हैं, जैसे मंत्र का जप कैसे करना चाहिए, मंत्र का जप कितने प्रकार का होना चाहिए, मंत्र जप के लिए कौन सी माला का प्रयोग करना चाहिए, किस मंत्र की पूजा किस विशेष समय पर या किस विशेष अवधि में करनी चाहिए आदि।

5. किसी विशेष देवता के साथ-साथ उचित फल प्राप्त करने के लिए भी किसी विशेष मंत्र का जप अनिवार्य है।

मंत्र साधना के लाभ

1. मन की चंचलता कम होने से स्थिरता प्राप्त होती है।

2. एकाग्र मन हमें अपने मूल देवता से जुड़ने में मदद करता है।

3. साधना का फल मंत्र के फल के समान ही प्राप्त होता है।

हिंदू धर्म में पूजा-पाठ में मंत्रों का विशेष महत्त्व होता है। शास्त्रों के अनुसार मंत्र बहुत प्रभावशाली होते हैं। इनके प्रभाव से अशुभ ग्रहों के दोष दूर हो सकते हैं और सुख, शांति और सफलता प्राप्त हो सकती है।

कुछ लोग मंत्र जप करते समय गलतियां भी कर देते हैं, जिसके कारण उन्हें मंत्र का पूरा फल नहीं मिल पाता है।

1. वैदिक मंत्र का जप सुबह या शाम के समय करना चाहिए। रात्रि के समय तंत्र से संबंधित मंत्र का जा जप किया जा सकता है।

2. मंत्र जप का समय एक ही होना चाहिए, बार-बार नहीं बदलना चाहिए। जप का समय बार-बार बदलने से उसका पूरा फल नहीं मिलता।

3. एक बार मंत्र जा जप शुरू करने के बाद बार-बार स्थान नहीं बदलना चाहिए। मंत्र जप के लिए एक ही स्थान निश्चित करना चाहिए।

4. मंत्र जप शुरू करने से पहले किसी विद्वान से माला का ज्ञान अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिए। गलत माला का प्रयोग करने पर मंत्र जप का पूरा फल नहीं मिलता।

5. मंत्र जप के लिए पैड, सूती चटाई या आसन पर बसना सर्वोत्तम होता है। सिंथेटिक आसन पर बैठकर मंत्र का जप नहीं करना चाहिए।

6. मंत्र जप करते समय माला दूसरों को न दिखाएं। अपने सिर को कपड़े से ढकें।

7. मनका को घुमाने के लिए मध्यमा उंगली का उपयोग किया जाना चाहिए।"

सनातन धर्म में प्रत्येक विशिष्ट देवता की आराधना के लिए वेदों में विशिष्ट मंत्रों की रचना की गई है। किसी मंत्र के बार-बार जप से उत्पन्न ऊर्जा में ब्रह्मांडीय ऊर्जा को आकर्षित करने और वांछित परिणाम प्राप्त करने की शक्ति होती है। और साधक को उस मंत्र के जप का उचित फल मिलता है जप

उचित मंत्र साधना जितनी कठोर और पवित्र है, वैसा ही साधक को उत्तम फल की प्राप्ति होती है | लेकिन गलत उच्चारण वाले मंत्र साधक को अशुभ फल देते हैं इसलिए कभी भी अपने मन से किसी भी मंत्र का जप नहीं करना चाहिए।

गुरु द्वारा दिए गए मंत्र को आत्मसात करना चाहिए और उसके अनुसार जप करना चाहिए ऐसा ही हमारा साहित्य तथा गुरूपरंपरा कहती है | मंत्र तो कई हैं परंतु मैने कुछ ही मंत्रो का यहाँ उल्लेख करके उनकी आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उपयुक्तता को सिद्ध करने का प्रयास किया है |

1. ऐक्य मंत्र : ऐक्य मंत्र के जप से ऑक्सीटोसिन नामक हार्मोन उत्पन्न होता है। घर में समाज के साथ मिलजुल कर रहने की भावना बढ़ती है।

2.नवार्ण मंत्र :- मनुष्य के शरीर के सभी चक्रों को जागृत करता है। इसमें नौ अक्षर हैं। जैसे ही लड़कियाँ चूड़ियाँ पहनती हैं, उनकी कलाइयों की धमनियाँ और नसें सक्रिय हो जाती हैं।

3.रामरक्षा स्तोत्र में 'र' का उच्चारण पित्ताशय, पित्त और आंतों की कार्यप्रणाली को संतुलित करता है।

4.गायत्री मंत्र:- गायत्री मंत्र के जप से एपिनोप्रिंस नामक हार्मोन उत्पन्न होता है। रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है। **ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।।**[v] उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अन्तरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

5. कालभैरवाष्टक : कालभैरवाष्टक स्तोत्र का पाठ करने से कुछ विशेष प्रकार के कंपन उत्पन्न होते हैं, जिससे 3 इंच तक हमारी रक्षा होती है। जब बच्चे गंध लगाते हैं तो भृकुटिममध्य पर स्थित आज्ञाचक्र सक्रिय हो जाता है।

6. प्रज्ञा विवर्धन स्तोत्र:- इसके पाठ से पीनियल ग्रंथि को आघात पहुंचता है और स्मृति चार्ज उत्पन्न होता है। डिमेंशिया नहीं होता | **प्रत्यूषे श्रद्धया कीयुक्तो मूको वाचस्पतिर्भवेत्।**[vi]

7. सरस्वती मंत्र, सूर्य मंत्र, गणपति अथर्वशीर्ष:- मस्तिष्क में कॉर्टेक्स नामक एक भाग होता है जो कॉर्टिज़ोन नामक हार्मोन का उत्पादन करता है। **ऋतं वच्मि । सत्यं वच्मि॥**[vii] अत: बुद्धि बढ़ती है और विवेक बढ़ता है।

8. विद्याप्रतिकारक स्तोत्र : इस स्तोत्र के पाठ से डीएचए नामक हार्मोन उत्पन्न होता है। बुद्धि का समुचित उपयोग इसी हार्मोन के कारण होता है।

9. दत्त महाराज का मंत्र : "द्रं" दत्त महाराज का बीज मंत्र है। इसके उच्चारण से कोशिका ऊतक निर्माण का कार्य (घाव भरने का कार्य) उचित हो जाता है।

10. शाबर मंत्र - डोपामाइन हार्मोन का निर्माण होता है। यह विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है कि इस हार्मोन का संतुलन बना रहे। डोपामाइन हार्मोन बढ़े तो लत अपराध और घटे तो अवसाद।

ऐसे और बहुत से मंत्र, बीज अक्षर है, जिनकी साधना और उच्चारण से हमें शारीरिक मानसिक तथा बौद्धिक विकास की उपलिब्ध हो सकती है| तथा इसी हेतु व्यक्ति विकास, पारिवारिक समृद्धि, सामाजिक उन्नति साध्य होते हुए वैदिक मान्यता के राष्ट्रकी संकल्पना पुनः उदयित होगी |

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मंत्रों का विविध उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अनुप्रयोग एवं अवधारणा वैज्ञानिक प्रतिमानों पर खरा उतरता है। भारतीय ज्ञान परंपरा का वर्तमान वैश्विक संदर्भ में अनुप्रयोग न केवल असाध्य बीमारियों के शमन का हेतु है बल्कि एक स्वस्थ शरीर के साथ-साथ स्वस्थ मन का निर्माण करते है। साथ ही स्वस्थ समाज एवं स्वस्थ राष्ट्र की संकल्पना को साकार करके कल्याणकारी विश्व का मार्ग प्रशस्त करते हैं ।

भारतीय ज्ञान परंपरा में भूगोल

विमल गोस्वामी

प्रयोगशाला परिचारक

शासकीय स्नातक महाविद्यालय हाटपीपल्या, जिला - देवास

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परंपरा का इतिहास अत्यंत प्राचीन और समृद्ध है। इसमें विज्ञान, गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्सा, और भूगोल जैसे विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया गया है। भूगोल का अध्ययन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह हमें पृथ्वी और उसके विभिन्न पहलुओं के बारे में जानकारी प्रदान करता है। इस शोध पत्र का उद्देश्य भारतीय ज्ञान परंपरा में भूगोल के महत्व और उसके विकास का विश्लेषण करना है।

भारतीय भूगोल का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

वैदिक काल में भूगोल

वैदिक साहित्य, विशेष रूप से ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में भूगोल का विस्तृत वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में सरस्वती नदी और सप्तसिंधु क्षेत्र का उल्लेख मिलता है, जो तत्कालीन भूगोलिक ज्ञान को दर्शाता है। वेदों में पर्वत, नदियाँ, और समुद्र का वर्णन हमें उस समय के भौगोलिक परिवेश की जानकारी प्रदान करता है।

वैदिक काल में भूगोल की महत्वपूर्ण भूमिका थी। वेदों और उपनिषदों में भूगोल का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है, जो हमें वैदिक समाज के भौतिक और सांस्कृतिक वातावरण के बारे में जानकारी प्रदान करता है।

1. भूगोल के शब्दिक अर्थ: वैदिक साहित्य में "भूगोल" शब्द के कई रूपांतर हैं। "भू" का अर्थ होता है भूमि या पृथ्वी और "गोल" का अर्थ होता है गोला या गोलाकार। इसका संक्षेप में अर्थ होता है "धरा का गोलाकार आकार"।

2. भूगोल का विवरण: वेदों में पृथ्वी के विविध पहलुओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। ऋग्वेद में पृथ्वी को "पृथ्वी माता" और "धराधारा" के रूप में समर्पित किया गया है।

3. भूगोलीय ज्ञान का उपयोग: वैदिक साहित्य में भूगोलीय ज्ञान का प्रयोग विभिन्न धार्मिक और आर्थिक कार्यों में होता था। प्राचीन ऋषियों ने सूर्य, चंद्रमा, तारे, नदियाँ, और पर्वतों की दिशा और गति को अच्छी तरह समझा था।

4. भूगोल का धार्मिक परिप्रेक्ष्य: वैदिक समाज में भूगोल का धार्मिक परिप्रेक्ष्य भी था। पृथ्वी को देवी और धर्म की माता के रूप में पूजा जाता था और लोगों के धार्मिक आदान-प्रदान के लिए उसके भूगोलीय विशेषताओं का प्रयोग किया जाता था।

5. भूगोल के शिक्षाप्रद पहलू: वैदिक समाज में भूगोल के शिक्षाप्रद पहलू भी थे। यहां तक कि वैदिक समाज के बच्चों को प्राकृतिक परिस्थितियों, वायुमंडल, और वृक्षों के बारे में उन्हें शिक्षा दी जाती थी।

पुराणों में भूगोल

पुराणों में भूगोल का अत्यंत विस्तृत और विशद वर्णन मिलता है। विष्णु पुराण, भागवत पुराण, और अन्य पुराणों में जम्बूद्वीप का वर्णन किया गया है, जिसमें भूगोलिक इकाइयों को विभिन्न द्वीपों और क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। पुराणों में वर्णित भूगोलिक स्थान हमारे प्राचीन भूगोलिक ज्ञान की गहराई को दर्शाते हैं। भारतीय पुराण साहित्य अत्यंत प्राचीन और विविधतापूर्ण है। यह न केवल धार्मिक और सांस्कृतिक ज्ञान का स्रोत है, बल्कि भूगोल, खगोलशास्त्र, इतिहास, और समाजशास्त्र जैसी विभिन्न शाखाओं में भी महत्वपूर्ण योगदान करता है। इस शोध पत्र का उद्देश्य पुराणों में वर्णित भूगोल का विश्लेषण करना है।

पुराणों का संक्षिप्त परिचय

पुराण भारतीय साहित्य के महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं, जो इतिहास, वंशावली, धर्म, दर्शन, और भूगोल के विषय में जानकारी प्रदान करते हैं। प्रमुख पुराणों में विष्णु पुराण, भागवत पुराण, वायु पुराण, मार्कंडेय पुराण, अग्नि पुराण, और ब्रह्माण्ड पुराण शामिल हैं।

जम्बूद्वीप का वर्णन

पुराणों में पृथ्वी को सात द्वीपों में विभाजित किया गया है, जिनमें से जम्बूद्वीप सबसे प्रमुख है। जम्बूद्वीप का वर्णन विष्णु पुराण, भागवत पुराण, और वायु पुराण में मिलता है।

जम्बूद्वीप के नौ खंड
जम्बूद्वीप को नौ खंडों में विभाजित किया गया है:
1. इलावृत
2. भद्राश्व
3. केतुमाल
4. हरिवर्ष
5. किंपुरुष
6. भारत
7. रम्यक
8. हिरण्यमय
9. कुरु

प्रत्येक खंड का अपना विशिष्ट भूगोल और सांस्कृतिक महत्व है। भारतखंड विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि इसे वर्तमान भारतवर्ष के रूप में माना जाता है।

प्रमुख नदियों और पर्वतों का वर्णन पुराणों में नदियों और पर्वतों का विस्तृत वर्णन मिलता है। प्रमुख नदियाँ और पर्वत निम्नलिखित हैं:

नदियाँ

1. गंगा : गंगा नदी का विस्तृत वर्णन भागवत पुराण और विष्णु पुराण में मिलता है।
2. सरस्वती : सरस्वती नदी का उल्लेख ऋग्वेद और विभिन्न पुराणों में मिलता है।
3. यमुना : यमुना नदी का वर्णन महाभारत और भागवत पुराण में प्रमुखता से किया गया है।
4. सिंधु : सिंधु नदी का वर्णन विशेष रूप से ऋग्वेद और पुराणों में मिलता है।

पर्वत

1. सुमेरु पर्वत : सुमेरु पर्वत को पुराणों में पृथ्वी का केंद्र माना गया है।

2. विंध्याचल : विंध्याचल पर्वत का उल्लेख विभिन्न पुराणों में मिलता है।
3. हिमालय : हिमालय पर्वत का वर्णन विष्णु पुराण और अन्य पुराणों में विस्तृत रूप से किया गया है।
4. मंदराचल : मंदराचल पर्वत का उल्लेख समुद्र मंथन की कथा में मिलता है।

पुराणों में तीर्थस्थल और पवित्र स्थान

पुराणों में विभिन्न तीर्थस्थलों और पवित्र स्थलों का भी वर्णन मिलता है। ये स्थान न केवल धार्मिक महत्व रखते हैं, बल्कि भूगोलिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। प्रमुख तीर्थस्थलों में:

1. काशी (वाराणसी) : भागवत पुराण में काशी का महत्व वर्णित है।
2. प्रयाग (इलाहाबाद) : विष्णु पुराण और अन्य पुराणों में प्रयाग का वर्णन मिलता है।
3. मथुरा : भागवत पुराण में मथुरा का महत्व भगवान कृष्ण की लीलाओं के संदर्भ में वर्णित है।
4. अयोध्या : विभिन्न पुराणों में अयोध्या का वर्णन भगवान राम की जन्मभूमि के रूप में किया गया है।

महाकाव्य और साहित्य में भूगोल

रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य भूगोल के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। रामायण में भगवान राम की यात्रा और उनके द्वारा पार किए गए विभिन्न स्थानों का वर्णन भूगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। महाभारत में भी अनेक स्थानों का वर्णन मिलता है, जो तत्कालीन भूगोल की समझ को प्रकट करता है। कालिदास के साहित्यिक कार्यों में भी भूगोलिक विवरण का महत्व है, जो उस समय की भौगोलिक स्थितियों का चित्रण करते हैं।

भारतीय विद्वानों द्वारा भूगोल का अध्ययन

आर्यभट्ट और वराहमिहिर के योगदान आर्यभट्ट और वराहमिहिर भारतीय गणित और खगोलशास्त्र के प्रमुख विद्वान थे, जिन्होंने भूगोल के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आर्यभट्ट की "आर्यभटीय" में पृथ्वी के आकार और उसकी परिधि का उल्लेख मिलता है। वराहमिहिर की

"बृहत्संहिता" में भी भूगोलिक अध्ययन का विस्तृत विवरण है, जिसमें नदियों, पर्वतों और अन्य भूगोलिक इकाइयों का वर्णन किया गया है।

भास्कराचार्य और अन्य गणितज्ञ

भास्कराचार्य की "सिद्धांत शिरोमणि" में भी भूगोल का महत्वपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने पृथ्वी के विभिन्न पहलुओं, जैसे उसकी गोलाकारता, परिधि, और अक्षीय झुकाव का विश्लेषण किया। अन्य भारतीय गणितज्ञों और खगोलशास्त्रियों ने भी भूगोल के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किए हैं, जिनका योगदान हमारे प्राचीन भूगोलिक ज्ञान को समृद्ध बनाता है।

भारतीय भूगोलिक मानचित्रण

प्राचीन भारतीय मानचित्र और उनकी विशेषताएँ

प्राचीन भारतीय मानचित्रों में नदियों, पर्वतों, और शहरों का वर्णन मिलता है। ये मानचित्र उस समय की भूगोलिक समझ और तकनीकों को दर्शाते हैं। प्राचीन काल में यात्रा और मार्गदर्शन के लिए कोस और यात्रा वृतांतों का उपयोग होता था। ये वृतांत न केवल भूगोलिक जानकारी प्रदान करते थे, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक संदर्भों को भी उजागर करते थे। प्राचीन भारतीय मानचित्रों का अध्ययन हमें भारतीय समाज और संस्कृति के विकास, व्यवस्था, और भौतिक विश्व के बारे में जानकारी प्रदान करता है। ये मानचित्र विभिन्न कालों में बनाए गए थे और उन्हें विभिन्न सांस्कृतिक संस्थाओं, धर्मों, और राज्यों के संदर्भ में विकसित किया गया था।

1. वेदिक मानचित्र : वेदों में मानचित्रों का उल्लेख पाया जाता है जो यज्ञ और ऋतुओं के समयों के स्थानों की विवरण के लिए उपयोगी थे। इन मानचित्रों में प्राचीन भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं की जानकारी होती थी।

2. जैन मानचित्र : जैन समुदाय ने भारतीय मानचित्रों का विकास किया, जिनमें वे अपने तीर्थंकरों के महत्वपूर्ण स्थलों को दिखाते थे। जैन मानचित्रों में धार्मिक स्थलों, तीर्थों, और जैन समुदाय के आध्यात्मिक संस्कृति की प्रतिष्ठाओं का विवरण था।

3. बौद्ध मानचित्र : बौद्ध मानचित्रों में बौद्ध धर्म के स्थलों, बौद्ध विहारों, और महात्माओं के स्थानों का विवरण होता था। इन मानचित्रों का उपयोग बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में भी किया जाता था।

4. मौर्य मानचित्र : मौर्य साम्राज्य के काल में भारतीय मानचित्रों का विकास हुआ जो राज्य की सीमाओं, प्रदेशों, और शहरों को दर्शाते थे। ये मानचित्र राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था के बारे में भी जानकारी प्रदान करते थे।

5. गुप्त मानचित्र : गुप्त साम्राज्य के काल में भी मानचित्रों का उपयोग राज्य की विभाजन और प्रशासनिक व्यवस्था के लिए होता था। इन मानचित्रों में गुप्त सम्राटों की सामरिक और आर्थिक विजयों का विवरण भी था।

6. पुराणिक मानचित्र : पुराणों में भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का मानचित्रों के माध्यम से वर्णन किया गया है। इन मानचित्रों में धार्मिक स्थलों, तीर्थों, और कथाओं का विवरण होता है।

आधुनिक युग में भारतीय भूगोल

ब्रिटिश काल में भारतीय भूगोल का पुनरावलोकन

ब्रिटिश काल में भारतीय भूगोल का पुनः अध्ययन और मानचित्रण किया गया। ब्रिटिश विद्वानों ने भारतीय भूगोल को व्यवस्थित रूप से दस्तावेजीकरण किया, जिससे हमें प्राचीन और मध्यकालीन भारत के भूगोल की विस्तृत जानकारी प्राप्त हुई। ब्रिटिश उपनिवेशवाद के दौरान, भारतीय भूगोल का अध्ययन और पुनरावलोकन एक महत्वपूर्ण गतिविधि रही। ब्रिटिश शासन ने भारत की भूगोलिक समझ को न केवल औपनिवेशिक प्रशासन और नियंत्रण के लिए आवश्यक पाया, बल्कि उन्होंने इसे वैज्ञानिक और शैक्षिक दृष्टिकोण से भी विकसित किया।

ब्रिटिश प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए भूगोल का महत्व

ब्रिटिश प्रशासन ने भारत के विभिन्न हिस्सों में नियंत्रण स्थापित करने के लिए भूगोल के विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता महसूस की। इसके अंतर्गत:

1. राजस्व संग्रह : भूगोलिक सर्वेक्षणों के माध्यम से भूमि का मापन और कर निर्धारण किया गया।

2. सैन्य रणनीति : भूगोल का अध्ययन सैन्य अभियानों और सैनिक ठिकानों की स्थापना के लिए महत्वपूर्ण था।

3. प्रशासनिक नियंत्रण : ब्रिटिश शासन ने विभिन्न क्षेत्रों को समझने और प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित करने के लिए भूगोल का उपयोग किया।

प्रमुख भूगोलिक सर्वेक्षण और अन्वेषण

ब्रिटिश काल में कई महत्वपूर्ण भूगोलिक सर्वेक्षण और अन्वेषण किए गए, जिनमें से प्रमुख हैं:

महान त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण

भारत के महान त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण की शुरुआत 1802 में हुई, जिसे विलियम लैम्बटन और बाद में जॉर्ज एवरेस्ट ने नेतृत्व किया। इस सर्वेक्षण का उद्देश्य भारतीय उपमहाद्वीप के विस्तृत मानचित्र बनाना और भूगोलिक विशेषताओं को मापना था। यह सर्वेक्षण 19वीं शताब्दी के मध्य तक चला और इसे भूगोल के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि माना गया।

भारतीय सर्वेक्षण विभाग (Survey of India)

1767 में स्थापित भारतीय सर्वेक्षण विभाग ने ब्रिटिश काल के दौरान भारत की भूगोलिक समझ को व्यवस्थित और व्यापक रूप से दस्तावेजीकरण किया। इस विभाग ने भारत के विभिन्न हिस्सों में विस्तृत मानचित्रण किया, जिससे ब्रिटिश प्रशासन और अनुसंधानकर्ताओं को महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई।

हिमालयी अन्वेषण

ब्रिटिश काल में हिमालय क्षेत्र का विस्तृत अन्वेषण भी हुआ। कई ब्रिटिश और भारतीय अन्वेषकों ने हिमालय की चोटियों, नदियों और घाटियों का अध्ययन किया। इन अन्वेषणों ने न केवल भूगोलिक बल्कि भूवैज्ञानिक और पर्यावरणीय दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान की।

ब्रिटिश भूगोलवेत्ताओं का योगदान

कई ब्रिटिश भूगोलवेत्ताओं ने भारतीय भूगोल के अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान दिया:

1. सर विलियम जोन्स : एशियाटिक सोसाइटी के संस्थापक, जिन्होंने भारतीय भूगोल, भाषा और संस्कृति के अध्ययन को प्रोत्साहित किया।
2. अलेक्जेंडर कर्निंघम : भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (Archaeological Survey of India) के संस्थापक, जिन्होंने भारतीय इतिहास और भूगोल पर महत्वपूर्ण कार्य किए।
3. जॉर्ज एवरेस्ट : महान त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण के सुपरिटेंडेंट, जिन्होंने माउंट एवरेस्ट की ऊंचाई मापी और उसके नामकरण में योगदान दिया।

ब्रिटिश काल में प्रकाशित मानचित्र और गजेटियर

ब्रिटिश काल के दौरान कई महत्वपूर्ण मानचित्र और गजेटियर प्रकाशित किए गए, जिनमें से प्रमुख हैं:

1. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ़ इंडिया : इस गजेटियर ने भारत के विभिन्न प्रांतों, जिलों, और शहरों का विस्तृत वर्णन और भूगोलिक जानकारी प्रदान की।

2. टोपोग्राफिकल मैप्स : ब्रिटिश सर्वेक्षण विभाग द्वारा बनाए गए विस्तृत टोपोग्राफिकल मानचित्रों ने भारत के विभिन्न हिस्सों की भूगोलिक विशेषताओं का सटीक चित्रण किया।

प्रभाव और विरासत

ब्रिटिश काल के भूगोलिक अध्ययन और मानचित्रण का भारतीय भूगोल पर स्थायी प्रभाव पड़ा:
1. शैक्षिक प्रभाव : भूगोल एक महत्वपूर्ण शैक्षिक विषय बन गया और भारतीय विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाने लगा।
2. प्रशासनिक सुधार : ब्रिटिश काल के भूगोलिक अध्ययन ने प्रशासनिक सुधारों और योजनाओं के लिए आधारभूत जानकारी प्रदान की।
3. वैज्ञानिक अनुसंधान : भूगोलिक सर्वेक्षण और अध्ययन ने वैज्ञानिक अनुसंधान और पर्यावरणीय अध्ययन को प्रोत्साहित किया।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय भूगोल का विकास

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय भूगोल का अध्ययन और विकास एक नए चरण में प्रवेश कर गया। भारतीय विद्वानों और संस्थानों ने भूगोल के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। राष्ट्रीय भूगोलिक अनुसंधान संस्थान और अन्य संस्थान भूगोल के अध्ययन और अनुसंधान में प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं।

निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान परंपरा में भूगोल का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक, भारतीय विद्वानों ने भूगोल के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किए हैं। आधुनिक समय में भी भारतीय भूगोल की प्रासंगिकता बनी हुई है और यह विषय अध्ययन और अनुसंधान के लिए महत्वपूर्ण बना हुआ है। भविष्य में भी भारतीय भूगोल के अध्ययन की अपार संभावनाएँ हैं।

संदर्भ

1. "Survey of India", Official Website.
2. Keay, John. The Great Arc: The Dramatic Tale of How India Was Mapped and Everest Was Named.
3. Edney, Matthew H. Mapping an Empire: The Geographical Construction of British India, 1765-1843.
4. Imperial Gazetteer of India, Various Volumes.
5. ब्रिटिश कालीन भारतीय भूगोल - विभिन्न ऐतिहासिक दस्तावेज

उल्लेखित कर व्यवस्था और करारोपण के आधुनिक सिद्धांतों में समानता

डॉ.

ज्योति शर्मा

सह प्रध्यापक अर्थशास्त्र

माता जीजाबाई शास. स्नात. कन्या महाविद्यालय इंदौर

संक्षेपिका

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय ज्ञान परंपरा को सभी स्तर के पाठ्यक्रमों में शामिल किया गया है। अर्थशास्त्र विषय में सम्मिलित अध्याय महाभारात में कर शान्ति पर्व के अनुसार इस शोध आलेख का विषय है। शोध आलेख इस बात को साबित करता है कि वर्तमान करारोपण के नियम और महाभारत में उल्लेखित कर व्यवस्था अत्यधिक समानता लिए हुए हैं। शोध आलेख के अनुसार भारतीय ज्ञान परंपरा से ही प्रभावित होकर विदेशी विद्वानों ने संभवत इन सिद्धांतों की रचना की। इस समय अवश्यकता इस बात की है की हम नई पीढ़ी को अपने मूल ज्ञान से परिचित

करवाए।

संकेत शब्द - करारोपण, राजस्व, श्लोक, शांति पर्व

महाभारत में उल्लेखित कर व्यवस्था और करारोपण के आधुनिक सिद्धांतों में समानता

2020 में लागू की गई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इस बात पर बल दिया गया है कि भारतीय ज्ञान परंपरा को सभी स्तरों के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए। महत्वपूर्ण प्रयास है की राष्ट्रीय क्रेडिट फ्रेमवर्क के साथ भारतीय ज्ञान को भी शामिल किया गया है। यह एक अच्छी शुरुआत है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अनुसार स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर क्रेडिट का 5% भारतीय ज्ञान परंपरा से संबंधित पाठ्यक्रम से होना चाहिए। इसी संदर्भ में एक उदाहरण के रूप में यह शोध आलेख प्रस्तुत है। उच्च शिक्षा विभाग के बी.ए. द्वितीय वर्ष अर्थशास्त्र के माइनर प्रश्न पत्र 'मुद्रा बैंकिंग और राजस्व' के पाठ्यक्रम में एक अध्याय है 'मूल्य एवं कर शांति पर्व महाभारत'।

इस अध्याय को पढ़कर विद्यार्थी महाकाव्य महाभारत के इतिहास एवं लेखन कला से परिचित होंगे, महाभारत काल की राजनीतिक व्यवस्था और उसके जनपदों से परिचित होंगे, महाभारत काल के 18 पर्वों से परिचित होंगे, 12 वे पर्व शांति पर्व के अंतर्गत आने वाले उप पर्वों की जानकारी प्राप्त करेंगे, शांति पर्व के विभिन्न अध्यायों में करारोपण से संबंधित श्लोकों का अध्ययन करेंगे, आधुनिक करारोपण के सिद्धांत एवं महाभारत में लिखे गए इन श्लोकों की समानता का अध्ययन करेंगे।

प्रस्तावना

कर लगाना और राजस्व संग्रह करना किसी भी राजा सरकार और प्रशासन के लिए प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य रहा है राज्य को चलाने के लिए, प्रशासनिक कार्यों का संचालन करने के लिए राज्य को आय की आवश्यकता होती है।समाज के विकास और देश की उन्नति के लिए भी अनेक कार्य राज्यों द्वारा किए जाते रहे हैं। महाभारत के शांति पर्व के अनुसार राजा के प्रमुख कार्य हैं :-

1.कृषि योग्य भूमि तैयार करना

2.नगर एवं ग्राम के पास पशुओं के निवास की व्यवस्था करना
3.आपातकाल में किसानों की सहायता करना
4.सड़कों का निर्माण करना
5.जरूरत पड़ने पर प्रजा को दान देना
6.राज्य में शांति स्थापित करना
7.राज्य की बाहरी आक्रमण से रक्षा करना
8.राज्य के निवासियों के लिए रोजगार की व्यवस्था करना
9.अपने राज्य के निवासियों के भौतिक और नैतिक उत्थान में सहायता करना
10.उनका कल्याण करना
इन सभी कार्यों को राजा तभी कर सकता है जब उसकी करारोपण व्यवस्था और राजस्व की स्थिति ठीक हो और उसका कोषया खजाना भरा हुआ हो। महाभारत काल में अनेक प्रकार के कर प्रचलित थे जैसे कृषि से प्राप्त आय पर कर, जलकर, नमक कर, अरण्य कर ,वस्तुओं के निर्माण पर कर।
शांति पर्व में एक श्लोक है-

कोशस्योपार्जनरतिर्यमवैश्रवणोपम:।
वेत्ता च दशवर्गस्य स्थानवृद्धिक्षयात्मन:।।

अर्थ - राजा के लिए उचित है कि वह सदा अपने कोषागार को भरा पूरा रखने का प्रयत्न करता रहे। न्याय करने में उसे यमराज और धन संग्रह करने में कु बेर के समान होना चाहिए। उसे स्थान वृद्धि, तथा क्षय के मूलभूत दस वर्गों का सदा ध्यान रखना चाहिए। परंतु कोष को भरने के लिए जब राजा प्रजा पर कर लगाए तो प्रजा से धर्म के अनुकूल कर ग्रहण करें और राज्य की नीति का विधि पूर्वक पालन करें तथा राजा को आलस्य छोड़कर प्रजा वर्ग के योग क्षेम की व्यवस्था करनी चाहिए।इससे संबंधित भी शांति पर्व में निम्न श्लोक है :-
तस्माद् राजा प्रगृहीत: प्रजास मूलं लक्ष्म्या: सर्वशोह्याददीत दीर्घ कालं ह्यपि सम्पीऽयमानो विद्युत्संपातमपि वा नोर्जित: स्यात्।।
महाभारत एक परिचय
महाभारत का वर्तमान रूप प्राचीन इतिहास, कथाओं तथा उपदेशों का भंडार माना जा सकता है। यह उस समय की सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालता है, लेकिन साथ ही राजनीतिक परिस्थितियों का विवरण भी इसमें दिया गया है। अनुमानों के आधार पर महाभारत का रचनाकाल 3100 से 1200 ईसा पूर्व माना गया है। महाभारत के तीन प्रमुख संस्करण है- जय, भारत और महाभारत। प्रारंभिक पुस्तक में लगभग 6000 श्लोक थे जो बाद में अन्य स्रोतों के आधार पर बढ़ गए । मौलिक रूप से जय संहिता में 8800 श्लोक थे जो भारत में 24000 हो गए और वर्तमान महाभारत ग्रंथ में 100000 से
भी अधिक श्लोक है। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि समय-समय पर इस महाकाव्य में विभिन्न लेखकों ने नई कहानियों को या ताजा घटनाक्रमों को जोड़ दिया।

शांति पर्व एक परिचय
महाभारत का 12 पर्व या भाग शांति पर्व के नाम से है। शांति पर्व में धर्म, दर्शन, राजनीति और आध्यात्मिक ज्ञान का वर्णन है। शांति पर्व के भी तीन प्रमुख उप पर्व या भाग हैं जो इस प्रकार है :-

1.राजधर्मनुशासन पर्व (अध्याय 1 से 130) इस उप पर्व में राजा के कर्तव्यों का वर्णन किया गया है।
2.आपधर्म अनुशासन पर्व (अध्याय 131 से 173) इस उप पर्व में विपरीत परिस्थितियों में अपनाए जाने वाले नियमों का वर्णन
किया गया है।
3.मोक्ष धर्म पर्व (अध्याय 174 से 365) इस उप पर्व में मोक्ष प्राप्ति के लिए व्यवहार और नियमों का वर्णन किया गया है । शांति पर्व के 87 और 88 अध्यायों में करारोपण से संबंधित अनेक श्लोक मिलते हैं। प्रसंग यह है की युधिष्ठिर दुखी होकर पश्चाताप कर रहे हैं। राजा बनना नहीं चाहते हैं। कृष्ण के समझाने के बाद भी मानने को तैयार नहीं है तब कृष्ण उन्हें बाणों की शैय्या पर लेटे हुए भीष्म पितामह के पास आशीर्वाद लेने के लिए ले जाते हैं। भीष्म बाणों की शैय्या पर लेटे हुए युधिष्ठिर को राजा के कर्तव्यों के निर्वहन के लिए अनेक सीख दे रहे हैं और यह भी सीख दे रहे हैं कि राजा को किस प्रकार कर लगाना चाहिए क्योंकि प्रजा सुखी होगी तो राजा सुखी होगा ।
1.कर लगाते समय राजा को कौन सी सावधानियां रखनी चाहिए ?
2.समाज के किस वर्ग पर अधिक कर लगाए जाने चाहिए और किस वर्ग पर कम कर लगाए जाने चाहिए ?
3.समाज के किस वर्ग को करों से छू ट मिलनी चाहिए ?
4.वस्तुओं पर कर लगाते समय राजा को किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?
शांति पर्व के श्लोक करारोपण के वर्तमान सिद्धांतों से किस प्रकार समानता लिए हुए हैं देखिये :
निश्चितता का सिद्धांत
आददीत बलिं चापि प्रजाभ्य: कुरुनंदन। स षडभागमपि प्राज्ञस्ता सामेवाभिगुप्तये।।
अर्थ - कुरु नंदन बुद्धिमान नरेश प्रजा जनों से उन्हीं की रक्षा के लिए आय का छठवां भाग कर के रूप में ग्रहण करे।
सुविधा का सिद्धांत
मधुदोह दुहेद राष्ट्रं भ्रमरा इव पादपंम्। वत्सापेक्षी दुहेच्चैव स्तनाश्र न विकुट्टयेत।।
अर्थ - जैसे भंवरा धीरे-धीरे फूल एवं वृक्ष का रस लेता है। वृक्ष को काटता नहीं है जैसे मनुष्य बछड़े को कष्ट न देकर धीरे-धीरे गाय को दुहता है उसके थनों को कुचल नहीं डालता है। उसी प्रकार राजा भी कोमलता के साथ ही राष्ट्र रुपी गौ का दहन करें।
यथा क्रमेण पुष्पेभ्यश्रिनोति मधु पट्पद:।
तथा द्रव्यमुपादाय राजा कुर्वीत संचयम्।।
अर्थ - जैसे मधुमक्खी क्रमशः अनेक फूलों से उसका रस संचय करके शहर तैयार करती है उसी प्रकार राजा समस्त प्रजा जनों से थोड़ा-थोड़ा द्रव्य लेकर उसका संचय करें। कर देय योग्यता का सिद्धान्त
ऊच्चावचकरा दाप्या महाराजा युधिष्ठिर।
यथा यथा न सीदेरस्तथा कुर्यान्महीपति:।
फलं कर्म च संप्रेक्ष्य तत: सर्व प्रकल्पयेत।।
अर्थ - युधिष्ठिर महाराज को चाहिए कि वह लोगों की हैसियत के अनुसार भारी और हल्का कर लेवे। भूपाल को उतना ही कर लेना चाहिए जितने से प्रजा संकट में ना पड़ जाए । उनका कार्य और लाभ देखकर ही सब कुछ करना चाहिए।
भृतो वत्सो जातवल: पीड़ांसहति भारत।
न कर्म कुरुते वत्सो भृशं दुग्धो युधिष्ठिर।।

अर्थ - भारत नंदन युधिष्ठिर जिस गाय का दूध अधिक नहीं दुहा जाता उसका बछड़ा अधिक काल तक उसके दूध से पुष्ठ और बलवान हो भारी भार ढोने का कष्ट सहन कर लेता है, परंतु जिसका दूध अधिक दुह लिया जाता है उसका बछड़ा कमजोर होने के कारण वैसा काम नहीं कर पता है। लोच का सिद्धांत

अल्पेनाल्पेन देयेन वर्धमानं प्रदापयेत।

ततो भूयस्ततो भूय: क्रमवृद्धिं समाचरेत्।।

अर्थ - वह पहले थोड़ा-थोड़ा कर लेकर उसे बढ़ावे और उसके बाद उस बढ़े हुए कर को वसूल करें ।उसके बाद समय अनुसार फिर उसमें थोड़ी-थोड़ी वृद्धि करते हुए क्रमश: बढाता रहे ताकि किसी को विशेष भार ना जान पड़े। अधिकतम कल्याण का सिद्धांत

प्रद्विष्टस्य कुत:श्रेयो नाप्रियो लभते फलम्।

घत्सौपम्येन दोग्धव्यं राष्ट्र क्षीणबुद्धिना।।

अर्थ - जिससे सब लोग द्वेष करते हैं उसका कल्याण कै से हो सकता है? जो प्रजा वर्ग का मित्र नहीं होता उसे कोई लाभ नहीं मिलता। जिसकी बुद्धि नष्ट नहीं हुई है उस राजा को चाहिए कि वह गाय के बछड़े की तरह राष्ट्र से धीरे-धीरे अपने उदर की पूर्ति करें।

उत्पादकता का सिध्दांत

विक्रयं क्रयमध्यामं भक्तं च सपरिच्छदम्।

योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य वणिजां कारयेत करान ।।

अर्थ - राजा को माल की खरीदी बिक्री, उसे बनाने का खर्च , उसमें काम करने वाले नौकरों के वेतन, बचत और योग क्षेम के निर्वाह की ओर दृष्टि रखकर ही व्यापारियों पर कर लगाना चाहिए।

लाभ का सिध्दांत

फलं कर्म च निहेतं न काश्चत समप्रवर्तते।

यथा राजा च कर्ता च स्याता कर्मणि भगिनौ।

संवेक्ष्य तु तथा राजा प्रणेया: सतत करा:।।

अर्थ- लाभ और कर्म दोनों ही यदि निष्प्रोजन हुए तो कोई भी काम करने में प्रवृत्त नहीं होगा।अतः जिस उपाय से राजा कार्यकर्ता दोनों को कृषि, वाणिज्य अथवा कर्म के लाभ का भाग प्राप्त हो, उस पर विचार करके ही राजा को सदैव करों का निर्णय करना चाहिए।

उपसंहार

महाभारत के उपरोक्त श्लोक वर्तमान में करारोपण के सिद्धांतो से अत्यधिक समानता लिए हुए हैं। एडम स्मिथ जिन्हें अर्थशास्त्र का जनक माना जाता है उनकी लिखी हुई पुस्तक वैल्थ ऑफ नेशंस में करारोपण के जिन सिद्धांतों का उल्लेख है जैसे की निश्चितता का सिध्दांत, सुविधा का सिद्धांत, कर देय योग्यता का सिध्दांत सभी महाभारत के श्लोक या उस समय की कर व्यवस्था से प्रभावित हुए हैं।तो क्यू न हम अपने मूल ज्ञान का उपयोग करें। और अपनी नई पीढ़ी को इस ज्ञान से परिचित करवाए।

Reference

1. https://www.researchgate.net/publication/337784427_Ancient_Indian_Taxation_System Page-77-93, Chapter 9 (Ancient Indian Taxation System)
2. https://archive.org/details/in.ernet.dli.2015.342300/page/n257/mode/2up?view=theater Chapter 87,88, Page- 257-262 (Book Page No. 4649-4654)
3. International Journal of Law Management and Humanities, Volume 5, Issue 3, Page 252 - 262 DOI: https://doij.org/10.10000/IJLMH.11308
4. https://en.wikipedia.org/wiki/Shanti_Parva
5. https://www.sacred-texts.com/hin/m12/index.htm

Bibliography

1. राम नारायण पंडित,(2013), शांति पर्व महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर

2. विद्यालंकार डॉक्टर सुमेधा, (2021), महाभारत में शांति पर्व का आलोचनात्मक अध्ययन, ईस्टर्न बुक लिं कर्स, दिल्ली

3. Sharma Sanjeev Kumar, (2016), Taxation and revenue collection in ancient India, Cambridge scholars publishers,U.K.

4. Prajapati Sweta,(2014), Ancient Indian taxation system, Dhimahi journal of Chinmaya international foundation, volume 5, Chinmaya international foundation, kochi,kerala.

भारतीय ज्ञान परंपरा और विश्व बंधुत्व

डॉ सुषमा व्यास
प्राध्यापक और विभाग अध्यक्ष अर्थशास्त्र
श्री अटल बिहारी वाजपेई शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय ,इंदौर

सर्वे भवंतु सुखिनः, सर्वे संतु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु, मां कश्चित् दुःखभाग् भवेत्।।
सभी सुखी रहे सभी स्वस्थ हो सभी कल्याण की ओर देखें कोई भी दुखी ना हो इस श्लोक में सभी के मंगल की कामना की गई है यह मंगल भावना
भारतीय संस्कृति का प्राण तत्व है।
भारतीय ज्ञान परंपरा दुनिया की सबसे प्राचीन और गौरवमय परंपरा रही है। स्वतंत्रता, समानता और विश्व बंधुत्व के सिद्धांतों को न केवल यह स्वीकार करती है, वरन् आत्मसात भी करती है। हमारे वेद, उपनिषद,पुराण, स्मृतिग्रंथ, गीता, रामायण और महाभारत जैसे अनेक ग्रंथ हमें जीवन जीने की कला सिखाते हैं और सभी के सुखी रहने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। "वसुधैव कुटुंबकम् " सभी के सुखी रहने का सूत्र वाक्य है। संपूर्ण पृथ्वी पर रहने वाले प्राणी एक परिवार की तरह है ।यह भावना परस्पर स्नेह और सौहार्द्र का वातावरण निर्मित करती है ।एक दूसरे के प्रति समर्पण का भाव भी जागती है। संपूर्ण पृथ्वी में परिवार की भावना एकता को दर्शाती है एकता मनुष्य को शक्ति प्रदान करती है ।एकता से ही परिवार ,समाज और राष्ट्र उन्नति के पथ को प्राप्त करता है जिस देश और समाज में एकता होती है, वह सर्वत्र सामान्य होता है। वेदों के मंत्रों सर्वत्र एकता के स्वर मुखरित होते हैं।यथा-
सं गच्छध्वं सं वदद्ध्वं सं वो मनांसि जानताम् ॥ १ ।।
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ २ ॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ३ ॥
अर्थात् हम साथ साथ चलें, साथ बोले ,एक जैसा सोचें, हमारे संकल्प ,हमारे हृदय, हमारा मन एक जैसा हो जिससे हम एक साथ रह सकें।

भारतीय संस्कृति में प्रतिदिन की पूजा ,पाठ ,प्रार्थना, आरती आदि सभी में विश्व मंगल की भावना व्यक्त होती है। दुर्गा सप्तशती का इसमें अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।इसमें 700 श्लोकों में देवी दुर्गा की स्तुति है, जिसमें देवी के उदात्त स्वरूप एवं शक्तियों के वर्णन के साथ स्व और पर के कल्याण की भावना निहित है । यहां कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं ।यथा -
सर्व मंगल की भावना

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि । नमोऽस्तु ते ॥ ३॥
शरणागत की रक्षा
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥४॥
भय से रक्षा के लिए कामना-
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥५॥
सर्व रोग दूर करने की कामना
रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥ 11/

विश्वके पाप-ताप-निवारणके लिये देवी से प्रार्थना-

- देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥
विश्वव्यापी विपत्तियोंके नाशके लिये भावना-
देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥
विपत्ति-नाशके लिये अर्चना-
विश्वके अभ्युदयके लिये वंदना-
विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥

इस तरह के अनेक पद्य है जिनमें संपूर्ण विश्व के प्राणियों के मंगल की, शुभ की ,रोग शोक,भय, पीड़ा आदि विपत्तियों से रक्षा की प्रार्थना है।

हमारे इन पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण महत्वपूर्ण और आवश्यक है क्योंकि किसी भी देश के सामाजिक और आर्थिक वातावरण में यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। स्वदेशी संस्कृति की जानने,

,संरक्षित करने और आर्थिक विकास तथा कल्याण को बढ़ावा देने में यह महत्वपूर्ण है।

आज विश्व के सामने आर्थिक विकास और आर्थिक कल्याण के मार्ग में कई चुनौतियां हैं। आधुनिकता की दौड़ में धर्म और जीवन के नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है । इससे अनेक समस्याएं विकराल रूप धारण कर रही है। वसुधैव कुटुंबकम् की भावना से
न केवल अनेक वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक समस्याओं के अपितु राष्ट्रीय समस्याओं के भी समाधान सहजता से हो सकते हैं।

हर देश अपने आर्थिक विकास का आधार इसको बनाए और विश्व बंधुत्व के भाव से आर्थिक नीतियों का निर्माण करे तो इससे निश्चित ही आर्थिक कल्याण में अभिवृद्धि होगी। युद्ध को कम करना, वरन् युद्ध हो ही नहीं , समाज में शांति और सद्भाव बनाए रखना और इसके लिए लोगों को प्रोत्साहित करना, भारतीय संस्कृति का"जियो और जीने दो'विचार हमारे ज्ञान परंपरा का आधार रहा है। भारत ने आज तक किसी भी देश पर अपने साम्राज्य में वृद्धि करने के लिए आक्रमण नहीं किया। इतिहास इस का साक्षी है।

"अहिंसापरमो धर्म'हमारा मार्गदर्शन सिद्धांत रहा है।

भगवान गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी केइस विचार को न केवल हमने वरन् विश्व के अन्य देश जैसे जापान ,इंडोनेशिया, मलेशिया ,थाईलैंड और अन्य इस्लामी देशों ने भी आत्मसात किया है। इंडोनेशिया की मुद्रा में ही भगवान गणेश की मुद्रा अंकित है।

सबका साथ सबका विकास हमारे ज्ञान परंपरा रही है। जब जब विदेशी आक्रांताओं ने भारत पर आक्रमण किया चाहे वह मुगल हो या अंग्रेज, हमने उन्हें आत्मसात किया है। यही कारण है कि आज हमारे देश में विभिन्न धर्म के लोग रहते हैं।

आज विश्व युद्ध की विभिषिका में जल रहा है चाहे वह रूस यूक्रेन युद्ध हो, ईरान इराक युद्ध हो या इजराइल का युद्ध विभीषिका में जलनाहो। इसका मुख्य कारण "वसुधैव कुटुंबकम् "की भावना का अभाव ही है। युद्ध के कारण पेट्रोल की कीमतों में बेतहाशा वृद्धि हो रही है, जिससे आर्थिक कल्याण में कमी आ रही है।

हमारे देश के स्वामी विवेकानंद हो, कबीर, गुरु नानक, या आदि शंकराचार्य हो, उन्होंने कभी भी कट्टरता का मार्ग नहीं अपनाया, उन्होंने विश्व को विश्व बंधुत्व की सीख दी है। हमारे ज्ञान परंपरा इतनी विस्तृत है कि इस यदि हमने आत्मसात किया तो कई समस्याएं स्वत:ही समाप्त हो जाएगी।

आज पर्यावरण प्रदूषण का मुख्य कारण भी हमारी संस्कृति से दूर होना ही है। हमारी परंपरा में तो हम जीव जंतु, नदी पहाड़, पेड़ पौधे सभी की पूजा और संरक्षण करते हैं ।आज पर्यावरणीय क्षति का मूल कारण भी हमारी संस्कृति से दूर हो जाना ही है "परहित सरस धर्म नहीं भाई'को जीवन के हर क्षेत्र में जीने का आधार बनाना होगा। स्वामी तुलसीदास जी का यह दोहा हमारी ज्ञान परंपरा का आधार है

तुलसी इस संसार में भांति भांति के लोग ।
सबसे हिलमिल चालिये नदी नाव संयोग।।

इसे जब हम अपने जीवन का आधार बनाएंगे तभी हम वसुधैव कुटुंबकम् और विश्व बंधुत्व के सपने को साकार कर पाएंगे ।

भारतीय ज्ञान परंपरा की वर्तमान सन्दर्भों में प्रासंगिकता

डॉ. अलका जैन, सह प्राध्यापक
श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय
इंदौर, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश: भारतीय ज्ञान परंपरा एक प्राचीन और समृद्ध धरोहर है जो सहस्राब्दियों से भारतीय समाज और संस्कृति की नींव रही है। वेद, उपनिषद, पुराण, आयुर्वेद, योग, ज्योतिष, वास्तु, संगीत, नाट्यशास्त्र, दर्शन और अन्य अनेक शास्त्रों के रूप में इस परंपरा ने विश्व को अद्वितीय ज्ञान और विज्ञान प्रदान किया है। वर्तमान समय में, जब तकनीकी उन्नति और वैश्वीकरण के कारण मानव जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन हो रहे हैं, भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता और अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। इस शोध पत्र में भारतीय ज्ञान परंपरा के विभिन्न आयामों की चर्चा करते हुए, उनके वर्तमान सन्दर्भों में प्रासंगिकता का विश्लेषण किया गया है। इसमें भारतीय दर्शन, आयुर्वेद, योग, और शैक्षणिक परंपराओं पर विशेष ध्यान दिया गया है। अद्वैत वेदांत और सांख्य जैसे दार्शनिक प्रणालियाँ आत्म-ज्ञान और आंतरिक शांति की खोज में महत्वपूर्ण हैं। आयुर्वेद और योग ने स्वास्थ्य और मानसिक शांति के लिए प्रभावी उपाय प्रस्तुत किए हैं। भारतीय शिक्षा प्रणाली की गुरु-शिष्य परंपरा और प्राचीन विश्वविद्यालयों की शिक्षा पद्धति नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों के विकास में सहायक हैं। साथ ही, भारतीय ज्ञान परंपरा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्सा और रसायनशास्त्र के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान देता है। भारतीय संगीत और कला की परंपरा ने वैश्विक मंच पर अपनी पहचान बनाई है। इस शोध पत्र का उद्देश्य भारतीय ज्ञान परंपरा की आधुनिक समय में उपयोगिता और महत्व को उजागर करना है, जिससे मानव जीवन को अधिक समृद्ध और संतुलित बनाया जा सके।

प्रमुख शब्द: भारतीय ज्ञान परंपरा, आयुर्वेद, योग, भारतीय दर्शन, शिक्षा प्रणाली

परिचय: भारतीय ज्ञान परंपरा सदियों से विश्व को दिशा देती आई है। इसका प्रभाव केवल भारत तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह विश्व के विभिन्न भागों में भी फैल गया। भारतीय ज्ञान परंपरा ने विज्ञान, चिकित्सा, दर्शन, कला और साहित्य के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह परंपरा वेदों, उपनिषदों, पुराणों, आयुर्वेद, योग, ज्योतिष, वास्तु, संगीत, नाट्यशास्त्र, दर्शन और अन्य शास्त्रों के माध्यम से समृद्ध हुई है। वर्तमान समय में, जब समाज एक नई दिशा की तलाश में है, यह आवश्यक हो गया है कि हम अपनी पुरानी धरोहरों को समझें और उनके द्वारा दिए

गए ज्ञान का उपयोग करें। भारतीय ज्ञान परंपरा की विशेषता यह है कि इसमें जीवन के हर पहलू का समावेश है। चाहे वह आत्मज्ञान की खोज हो, स्वास्थ्य और चिकित्सा का क्षेत्र हो, शैक्षणिक प्रणाली हो या कला और संस्कृति, भारतीय ज्ञान परंपरा ने हर क्षेत्र में अपना अमूल्य योगदान दिया है। वर्तमान समय में, जब तकनीकी उन्नति और वैश्वीकरण के कारण मानव जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन हो रहे हैं, भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता और भी महत्वपूर्ण हो गई है।

भारतीय दर्शन और उसकी प्रासंगिकता: भारतीय दर्शन की जड़ें वेदों और उपनिषदों में हैं। यह दर्शनिक परंपरा सहस्राब्दियों से भारतीय समाज को दिशा और दृष्टि देती आई है। अद्वैत वेदांत, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और बौद्ध दर्शन जैसे विभिन्न दर्शनिक प्रणालियों ने मानव जीवन को गहराई से समझने और उसके उद्देश्य को पहचानने का मार्गदर्शन किया है। इन दार्शनिक प्रणालियों ने न केवल भारतीय समाज को, बल्कि पूरे विश्व को प्रभावित किया है।

अद्वैत वेदांत: अद्वैत वेदांत के अनुसार, आत्मा और ब्रह्म एक ही हैं। इसका मौलिक सिद्धांत 'अहं ब्रह्मास्मि' का गूढ़ रहस्य व्यक्ति को आत्म-ज्ञान की ओर ले जाता है। अद्वैत वेदांत का सिद्धांत मानता है कि सभी जीवात्माएँ एक ही ब्रह्म के विभिन्न रूप हैं। इसका उद्देश्य आत्मज्ञान प्राप्त करना और मोक्ष की ओर अग्रसर होना है। वर्तमान समय में, आत्मज्ञान और आंतरिक शांति की खोज में अद्वैत वेदांत की शिक्षाएँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। जीवन की भागदौड़ और तनावपूर्ण परिस्थितियों में अद्वैत वेदांत का संदेश व्यक्ति को आंतरिक शांति और स्थिरता प्रदान करता है।

सांख्य और योग: सांख्य दर्शन ने प्रकृति (प्रकृति) और पुरुष (आत्मा) के बीच के भेद को स्पष्ट किया। यह दर्शन मानता है कि सृष्टि का निर्माण प्रकृति और पुरुष के संयोग से होता है। योग दर्शन ने व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास का मार्ग प्रस्तुत किया। योग केवल शारीरिक अभ्यास नहीं है, बल्कि यह मानसिक और आत्मिक संतुलन का भी माध्यम है। वर्तमान समय में, योग की प्रासंगिकता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। योग ने न केवल भारत में, बल्कि विश्व भर में अपनी पहचान बनाई है। आजकल योग को स्वास्थ्य, मानसिक शांति और आत्मिक उन्नति के लिए व्यापक रूप से अपनाया जा रहा है।

आयुर्वेद और उसकी प्रासंगिकता: आयुर्वेद, भारतीय चिकित्सा प्रणाली का एक अभिन्न अंग है, जो सदियों से मानव जीवन को स्वस्थ और संतुलित बनाए रखने में सहायक रहा है। आयुर्वेद का

मुख्य उद्देश्य रोगों का उपचार ही नहीं, बल्कि रोगों की रोकथाम और स्वस्थ जीवन का संरक्षण भी है। आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में पंचकर्म, धातु चिकित्सा, वनौषधियों का उपयोग आदि महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। आधुनिक चिकित्सा प्रणाली के साथ-साथ आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति भी आजकल महत्वपूर्ण हो गई है, विशेष रूप से जीवनशैली से संबंधित बीमारियों के उपचार में। आयुर्वेद के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति का शरीर विशेष प्रकार के दोषों (वात, पित्त, कफ) से बना होता है, और संतुलित जीवन जीने के लिए इन दोषों का संतुलन बनाए रखना आवश्यक है।

योग और उसकी प्रासंगिकता: योग का उद्भव भारतीय ज्ञान परंपरा में हुआ और यह वर्तमान में भी प्रासंगिक बना हुआ है। योग केवल शारीरिक व्यायाम नहीं है, बल्कि यह मानसिक और आत्मिक शांति का भी स्रोत है। आधुनिक जीवन की भागदौड़ में, योग ने लोगों को मानसिक शांति और संतुलन बनाए रखने का एक महत्वपूर्ण माध्यम प्रदान किया है। योगासन, प्राणायाम, ध्यान और अन्य योगिक क्रियाएँ व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करती हैं। वर्तमान समय में, जब जीवनशैली से संबंधित बीमारियाँ बढ़ रही हैं, योग ने स्वास्थ्य सुधार के लिए एक प्रभावी उपाय के रूप में अपनी पहचान बनाई है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली: प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में गुरु-शिष्य परंपरा का विशेष महत्व था। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला जैसी प्राचीन विश्वविद्यालयों ने विश्व भर से छात्रों को आकर्षित किया। इन विश्वविद्यालयों में विभिन्न विषयों का गहन अध्ययन किया जाता था, जिसमें विज्ञान, गणित, चिकित्सा, दर्शन, और साहित्य शामिल थे। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में भी भारतीय शिक्षा प्रणाली के सिद्धांतों को समाहित करने की आवश्यकता है, जिससे नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों का विकास हो सके।

गुरु-शिष्य परंपरा: भारतीय शिक्षा प्रणाली में गुरु-शिष्य परंपरा का विशेष महत्व था। गुरु और शिष्य के बीच का संबंध केवल शिक्षा तक सीमित नहीं था, बल्कि यह एक आध्यात्मिक और नैतिक मार्गदर्शन का भी माध्यम था। गुरु अपने शिष्यों को न केवल शास्त्रों का ज्ञान प्रदान करता था, बल्कि जीवन के विभिन्न पहलुओं के बारे में भी शिक्षित करता था। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में, इस परंपरा को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है, जिससे विद्यार्थियों में नैतिकता, अनुशासन और सम्मान के मूल्यों का विकास हो सके।

प्राचीन विश्वविद्यालय: तक्षशिला, नालंदा और विक्रमशिला जैसे प्राचीन विश्वविद्यालयों ने शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन विश्वविद्यालयों में केवल भारतीय विद्यार्थी ही नहीं, बल्कि विश्व के विभिन्न भागों से विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। यहाँ पर विज्ञान, गणित, चिकित्सा, दर्शन, साहित्य और अन्य विषयों का गहन अध्ययन होता था। वर्तमान समय में, इन प्राचीन विश्वविद्यालयों की शिक्षा पद्धति और उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली शिक्षा का अध्ययन और पुनर्संरचना आवश्यक है।

भारतीय ज्ञान परंपरा और वैज्ञानिक दृष्टिकोण: भारतीय ज्ञान परंपरा ने विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्सा, रसायनशास्त्र आदि में भारतीय विद्वानों के कार्य आज भी प्रासंगिक हैं। उदाहरणस्वरूप, आर्यभट्ट और भास्कराचार्य ने खगोलशास्त्र और गणित में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आर्यभट्ट ने शून्य की खोज की और भास्कराचार्य ने गणित के विभिन्न सिद्धांतों का विकास किया।

गणित और खगोलशास्त्र: भारतीय गणित और खगोलशास्त्र का इतिहास बहुत पुराना है। आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य जैसे महान गणितज्ञों ने गणित के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आर्यभट्ट ने शून्य की खोज की, जो गणित के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण आविष्कार था। भास्कराचार्य ने गणित के विभिन्न सिद्धांतों का विकास किया, जो आज भी प्रासंगिक हैं।

चिकित्सा और रसायनशास्त्र: भारतीय चिकित्सा प्रणाली, विशेष रूप से आयुर्वेद, ने चिकित्सा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। चरक और सुश्रुत ने चिकित्सा के विभिन्न पहलुओं का विस्तार से वर्णन किया। सुश्रुत को शल्य चिकित्सा का जनक माना जाता है। भारतीय रसायनशास्त्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किए गए, जैसे धातु विज्ञान, औषधि निर्माण आदि।

भारतीय संगीत और कला: भारतीय संगीत और कला की परंपरा भी अद्वितीय है। शास्त्रीय संगीत, नृत्य और नाट्यशास्त्र ने भारतीय संस्कृति को समृद्ध किया है। वर्तमान समय में, भारतीय संगीत और कला ने वैश्विक मंच पर अपनी पहचान बनाई है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में राग और ताल का विशेष महत्व है, जो व्यक्ति के मानसिक और आत्मिक शांति का स्रोत है। भारतीय नृत्य शैलियाँ, जैसे भरतनाट्यम, कथक, कुचिपुड़ी, ओडिसी आदि, भी अद्वितीय हैं और उन्होंने भारतीय संस्कृति को वैश्विक मंच पर प्रतिष्ठा दिलाई है।

नाट्यशास्त्र: भरत मुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र भारतीय नाट्यकला का महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें नाट्यकला के विभिन्न पहलुओं का विस्तृत वर्णन किया गया है, जैसे अभिनय, संगीत, नृत्य, रंगमंच आदि। वर्तमान समय में, नाट्यशास्त्र की शिक्षाएँ न केवल भारतीय रंगमंच में, बल्कि विश्व के विभिन्न भागों में भी प्रासंगिक हैं।शोध पत्र के अंतर्गत विभिन्न आयामों को स्पष्ट करने के लिए हम निम्नलिखित तालिका काउपयोग कर सकते हैं: तालिका 1: भारतीय दर्शन के प्रमुख सिद्धांत

दर्शन	प्रमुख सिद्धांत	उद्देश्य	प्रासंगिकता
अद्वैत वेदांत	आत्मा और ब्रह्म का एकत्व	आत्मज्ञान और मोक्ष	आंतरिक शांति और स्थिरता
सांख्य	प्रकृति और पुरुष का भेद	सृष्टि की उत्पत्ति और विकास	मानसिक और आत्मिक संतुलन
योग	चित्तवृत्ति निरोध	शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास	स्वास्थ्य और मानसिक शांति
न्याय	तर्क और प्रमाण	सत्य की खोज	वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तर्कशास्त्र
वैशेषिक	परमाणु सिद्धांत	पदार्थ और गुणों का अध्ययन	विज्ञान और तत्वमीमांसा
मीमांसा	वेदों के कर्मकांड	धर्म की स्थापना	धार्मिक और नैतिक मूल्य
बौद्ध	अहिंसा और करुणा	दुख के कारणों का विश्लेषण	सामाजिक शांति और सामंजस्य

तालिका 2: आयुर्वेद के प्रमुख सिद्धांत और उनके लाभ

सिद्धांत	विवरण	आधुनिक प्रासंगिकता
त्रिदोष सिद्धांत	वात, पित्त, कफ	जीवनशैली बीमारियों का उपचार
पंचकर्म	शोधन और शमन उपचार	शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य
धातु चिकित्सा	धातुओं का उपयोग	आयुर्वेदिक औषधि निर्माण
वनौषधियों का उपयोग	प्राकृतिक चिकित्सा	हर्बल उपचार और औषधियाँ

तालिका 3: योग के प्रमुख अंग और उनके लाभ

अंग	विवरण	लाभ
यम	सामाजिक आचार	नैतिक और सामाजिक अनुशासन
नियम	व्यक्तिगत आचार	शारीरिक और मानसिक शुद्धता
आसन	शारीरिक मुद्राएँ	शारीरिक स्वास्थ्य और लचीलापन
प्राणायाम	श्वास नियंत्रण	मानसिक शांति और आत्मिक उन्नति
प्रत्याहार	इंद्रियों का नियंत्रण	मानसिक नियंत्रण और शांति
ध्यान	ध्यान और एकाग्रता	आत्मज्ञान और आंतरिक शांति
समाधि	आत्मसाक्षात्कार	मोक्ष और आंतरिक स्थिरता

तालिका 4: प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली के प्रमुख तत्व

तत्व	विवरण	वर्तमान प्रासंगिकता
गुरु-शिष्य परंपरा	व्यक्तिगत और नैतिक शिक्षा	नैतिकता और अनुशासन का विकास
तक्षशिला विश्वविद्यालय	विज्ञान और कला की शिक्षा	आधुनिक शिक्षा प्रणाली में समावेश
नालंदा विश्वविद्यालय	धार्मिक और सांस्कृतिक शिक्षा	सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण
विक्रमशिला विश्वविद्यालय	विज्ञान, चिकित्सा और दर्शन	व्यापक और समग्र शिक्षा

तालिका 5: भारतीय ज्ञान परंपरा के वैज्ञानिक योगदान

क्षेत्र	विद्वान	योगदान	वर्तमान प्रासंगिकता
गणित	आर्यभट्ट	शून्य की खोज	आधुनिक गणित और कंप्यूटिंग
खगोलशास्त्र	भास्कराचार्य	खगोलशास्त्र सिद्धांत	आधुनिक खगोलशास्त्र और अंतरिक्ष अनुसंधान
चिकित्सा	चरक	आयुर्वेदिक चिकित्सा	जीवनशैली बीमारियों का उपचार
शल्य चिकित्सा	सुश्रुत	शल्य चिकित्सा पद्धतियाँ	आधुनिक शल्य चिकित्सा तकनीक
रसायनशास्त्र	नागार्जुन	धातु विज्ञान	आधुनिक रसायनशास्त्र और औषधि निर्माण

इन तालिकाओं के माध्यम से, भारतीय ज्ञान परंपरा के विभिन्न आयामों का विस्तृत और संगठित रूप में अध्ययन और विश्लेषण किया जा सकता है। ये तालिकाएँ शोध पत्र को अधिक स्पष्ट और समझने में आसान बनाएंगी।

निष्कर्ष: भारतीय ज्ञान परंपरा एक ऐसी धरोहर है जो समय-समय पर समाज को दिशा देती रही है। वर्तमान समय में, जब मानवता नई चुनौतियों का सामना कर रही है, भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ गई है। इस शोध पत्र के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा न केवल प्राचीन समय में महत्वपूर्ण थी, बल्कि आज भी उसका महत्व बरकरार है। भारतीय ज्ञान परंपरा के विभिन्न आयामों का अध्ययन और उनका आधुनिक समय में उपयोग, मानव जीवन को अधिक समृद्ध और संतुलित बना सकता है। भारतीय ज्ञान परंपरा के सिद्धांतों और शिक्षाओं को वर्तमान शिक्षा प्रणाली में समाहित करना आवश्यक है, जिससे विद्यार्थियों में नैतिकता, अनुशासन और सांस्कृतिक मूल्यों का विकास हो सके। योग और आयुर्वेद के माध्यम से स्वस्थ जीवन जीने का मार्ग प्रस्तुत किया जा सकता है। भारतीय दर्शन की शिक्षाएँ आत्मज्ञान और आंतरिक शांति की प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी महत्वपूर्ण है, जो विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान परंपरा की वर्तमान सन्दर्भों में प्रासंगिकता अत्यंत महत्वपूर्ण है और इसका अध्ययन और अनुसरण करना हमारे समाज के लिए आवश्यक है।

संदर्भ सूची:

1. शर्मा, आर. के. (2018). भारतीय दर्शन: एक परिचय. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.
2. सिंह, एस. (2020). भारतीय योग परंपरा. ऋषिकेश: योग निकेतन.
3. जोशी, एम. जी. (2011). भारतीय आयुर्वेद. पुणे: आयुर्वेद प्रतिष्ठान.
4. सुश्रुत (2001). सुश्रुत संहिता. दिल्ली: चौखम्बा संस्कृत सीरीज.
5. चरक (2004). चरक संहिता. वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज.
6. राधाकृष्णन, एस. (2002). भारतीय दर्शन का इतिहास. मुंबई: इंडियन काउंसिल ऑफ फिलॉसॉफिकल रिसर्च.
7. शंकर, के. एन. (2016). भारतीय कला और संस्कृति. दिल्ली: राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय.
8. सेन, ए. (2008). भारतीय सामाजिक दर्शन. कोलकाता: प्रकाश भारती.
9. खरे, एस. पी. (2019). भारतीय दर्शन में नैतिकता. बनारस: काशी हिंदू विश्वविद्यालय.
10. तिवारी, आर. (2017). भारतीय परंपरागत ज्ञान और विज्ञान. भोपाल: म. प्र. हिंदी ग्रंथ अकादमी.

भारतीय ज्ञान परम्परा में विभिन्न दर्शनों का गणितीय योगदान : जैन दर्शन के विशेष संदर्भ में

डॉ. मुकेश जैन, प्रोफेसर

उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, भोपाल

: सारांश (Summary) :

भारत में 'दर्शन' उस ज्ञान को कहा जाता है जिसके द्वारा पदार्थ का ज्ञान प्राप्त किया जा सके। 'तत्त्व दर्शन' या 'दर्शन' का अर्थ है तत्व का ज्ञान। भारत में तत्वों की खोज का चलन उस सुदूर काल से ही रहा है, जिसे हम 'वैदिक युग' कहते हैं। ऋग्वेद के अति प्राचीन काल से ही हमें भारतीय विचारों में दोहरी प्रवृत्तियाँ और दोहरे लक्ष्य दिखाई देते हैं। पहली प्रवृत्ति प्रतिभा या बुद्धि पर आधारित होती है और दूसरी प्रवृत्ति तार्किक होती है। बुद्धि की शक्ति के कारण पहली प्रवृत्ति तत्वों का विश्लेषण करने में सक्षम होती है और दूसरी प्रवृत्ति तर्क की सहायता से तत्वों की समीक्षा करने में सक्षम होती है। उपनिषदों का ज्ञान आत्मा और परमात्मा के एकीकरण को सिद्ध करने वाले शानदार वेदांत में परिणत हुआ। इस प्रकार हम देख सकते हैं, कि प्राचीन गणित काल के दौरान गणितीय विचारों को निर्माण के उद्देश्य से विकसित किया गया था। इसके अलावा खगोल विज्ञान के अध्ययन को और भी पुराना माना जाता है, और ऐसे कई गणितीय सिद्धांत रहे होंगे, जिन पर खगोल विज्ञान आधारित था। वेदों के पूरक और संस्कृत के सूत्रग्रन्थ शुल्बसूत्र (Shulba Sutras), 800 से 200 ईसा पूर्व के माने जाते हैं। इसी प्रकार जैन गणित काल के तहत जैन ब्रह्मांड विज्ञान ने अनंत के विचारों को जन्म दिया। इस प्रकार एक गणितीय अवधारणा के रूप में अनंत के अनुक्रम की धारणाओं का विकास हुआ। भारतीय गणित की इस समृद्ध विरासत ने विश्व के गणितीय ज्ञान को गहराई से प्रभावित किया है और आज भी इसकी प्रासंगिकता और महत्व को स्वीकार किया जाता है। यूरोपीय गणितज्ञ कई वर्षों तक ऋणात्मक संख्या को सार्थक मानने से हिचकते रहे किंतु 17 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यूरोपीय गणितज्ञ गॉटफ्रीड विल्हेम लीबनिज (Gottfried Wilhelm Leibniz) ने अपने अवकलन-शास्त्र (Calculus) के विकास में शून्य और ऋणात्मक संख्याओं को एक साथ, भारतीय गणितज्ञों ने गणित के विभिन्न क्षेत्रों जैसे त्रिकोणमिति, बीजगणित, अंकगणित और ऋणात्मक संख्याओं के अध्ययन में भी मौलिक योगदान दिया है।

वेदों में गणित के विभिन्न पहलुओं का उल्लेख मिलता है, और यजुर्वेद में खगोलशास्त्र (ज्योतिष) के विद्वानों को 'नक्षत्रदर्श' कहा गया है। छान्दोग्य उपनिषद् में गणित को 'राशि विद्या' के नाम से जाना गया है । ब्रह्मगुप्त, आर्यभट्ट, भास्कराचार्य जैसे गणितज्ञों ने अपने ग्रंथों में गणितीय सिद्धांतों को स्थापित किया, जिनका उपयोग आज भी विश्व भर के गणितज्ञ करते हैं।

ब्रह्मगुप्त ने द्विघात समीकरणों और वर्गमूलों की गणना के लिए नियम प्रस्तुत किए, और ऋणात्मक संख्याओं के साथ उपयोग होने वाले नियमों को भी प्रदर्शित किया।

जैन धर्म सृष्टि को अनादिनिधन बताता है हमेशा से है और जो कभी नष्ट नहीं होगी। जैन दर्शन के अनुसार ब्रह्मांड हमेशा से अस्तित्व में है और हमेशा रहेगा। यह ब्रह्मांड प्राकृतिक कानूनों द्वारा नियंत्रित है और अपनी ही ऊर्जा प्रक्रियाओं द्वारा रखा जा रहा है। जैन दर्शन के अनुसार ब्रह्मांड शाश्वत है और ईश्वर या किसी अन्य शक्ति ने इसे नहीं बनाया। जैन गणित काल के तहत जैन ब्रह्मांड विज्ञान ने अनंत के विचारों को जन्म दिया। इस प्रकार एक गणितीय अवधारणा के रूप में अनंत के अनुक्रम की धारणाओं का विकास हुआ। अनंत की जांच के अलावा, इस अवधि में भिन्न और संयोजन के साथ कई अन्य क्षेत्रों जैसे संख्या सिद्धांत, ज्यामिति आदि का विकास हुआ। विशेष रूप से, द्विपद गुणांक और 'पास्कल का त्रिकोण' (Pascal's Triangle) के लिए पुनरावृत्ति सूत्र इस अवधि में पहले से ही ज्ञात थे। जैन ऋषियों में क्रमचय-संचय (Permutations and combinations) काफी लोकप्रिय था। जैन दर्शन के भगवती सूत्र, जिसे व्याख्याप्रज्ञप्ति भी कहा जाता है, में गणितीय व्याख्याएं और सिद्धांतों का विस्तृत वर्णन है। इस ग्रंथ में गणितशास्त्र के अध्याय में क्रमचय-संचय (Permutations and Combinations) पर चर्चा की गई है। इसमें विभिन्न मौलिक दार्शनिक वर्गों को एक साथ लेने पर बनने वाले समुच्चयों की संख्या की गणना की गई है।[1] जैसे, दिये गये मौलिक दार्शनिक वर्गों को एक, दो, तीन या अधिक एक साथ लेने पर कितने समुच्चय बन सकते हैं।[2] इस ग्रन्थ में १-१ लेकर बने समुच्चयों (कम्बिनेशन्स) को 'अलक संयोग' कहा गया है, २-२ लेकर बने समुच्चयों को 'द्विक संयोग' कहा गया है और द्विक संयोग की संख्या n(n-1)/2 बतायी गयी है। भगवतीसूत्र में दीर्घवृत्त के लिये 'परिमण्डल' शब्द प्रयोग किया गया है और इसके दो भेद बताये गये हैं-[3]समतल दीर्घवृत्त और घन दीर्घवृत्त ।

इस प्रकार, जैन दर्शन के भगवती सूत्र में गणितीय व्याख्याएं और सिद्धांतों का गहरा अध्ययन और विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जो उस समय के गणितीय ज्ञान की गहराई और विस्तार को दर्शाता है। जैन दर्शन में गणितीय योगदान के कुछ प्रमुख उदाहरण हैं:

सिद्धसेन दिवाकर (500 ई.) ने 'लोकविभाग' नामक ग्रंथ में अनंत की अवधारणा पर चर्चा की थी।

हरिभद्र (900 ई.) ने गणितीय तर्कों का उपयोग करते हुए जैन धर्म के सिद्धांतों को समझाया।

मेरुतुंग (14वीं ई.) ने जैन धर्म के विभिन्न गणितीय पहलुओं पर काम किया।

इन गणितज्ञों ने जैन दर्शन के अनुसार अनंत की अवधारणा, अनेकांतवाद, और स्याद्वाद के सिद्धांतों को गणितीय रूप से प्रस्तुत किया, जिससे गणित के क्षेत्र में नए आयाम खुले। योजनाकारों द्वारा थोपी हुई ब्रिटिश शिक्षा पध्दति के पाठ्यक्रमों को छोड़ इसी तरह के समृद्ध भारतीय परम्परागत ज्ञान को नवीन में पाठ्यक्रमों में शामिल करने की बात की जा रही है, जो एक स्वागत योग्य कदम है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरण संतुलन के सूत्र

डॉ निशीथ गौड़,
असिस्टेंट प्रोफेसर
डी. ई. आई. दयालबाग, आगरा
nishithgaur@dei.ac.in
93191 08941

सारांश- हमारे चारों ओर वायुमंडल, जलमंडल, स्थलमंडल विविध प्रकार के जीव- जंतु एवं वनस्पतियाॅं हैं, इसे ही पर्यावरण के संघटक तत्त्व के रूप में जाना जाता है। पर्यावरण की सुरक्षा में ही मानव जीवन सुरक्षित है, अन्यथा अपार समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। यदि पर्यावरण पर सूक्ष्म चिंतन किया जाए तो वह द्विविध होता है- अंतः पर्यावरण प्रदूषण और वाह्य पर्यावरण प्रदूषण।

हमारे मनीषियों ने सहस्त्रों वर्ष पूर्व मानव जीवन के कल्याणार्थ पर्यावरण का महत्त्व और उसकी रक्षा प्रकृति से सान्निध्य, संवेदनशीलता, रोगों के उपचार तथा स्वास्थ्य संबंधी अनेक लाभदायक तत्त्व निकाले थे। जब हमारा मन कलुषित विचारधाराओं से भरा हुआ होता है, तब हम कहते हैं कि हमारा अंतः पर्यावरण प्रदूषित हो गया और जब वायु, जल, पृथ्वी, वनस्पति, ध्वनि आदि प्रदूषित हो जाता है तब वहीं पर्यावरण के प्रदूषण को स्वीकार किया जाता है। ध्यातव्य है कि वाह्य पर्यावरण तभी प्रदूषित होता है जब हमारा आंतरिक पर्यावरण अर्थात् मन विकृत होता है। यदि मन में प्रदूषण न हो तो किसी भी प्रकार का वाह्य प्रदूषण नहीं होगा।

औद्योगीकरण एवं भूमंडलीकरण से पूर्व मानव सहजतापूर्वक पर्यावरण के साथ समन्वय से रहता था, पीपल और तुलसी आदि पेड़- पौधों की पूजा करता था। वेदकालीन समाज में न केवल पर्यावरण के सभी पहलुओं पर सूक्ष्म दृष्टि थी वरन् उसकी सुरक्षा और महत्त्व को भी स्पष्ट किया गया था। उन्होंने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में पर्यावरण की रक्षा की और समाज का ध्यान भी इस

ओर आकर्षित किया। पर्यावरण की रक्षा पूजा का एक अविभाज्य अंग था। अथर्ववेद के दसवें कांड का मंत्र है-

यस्य भूमि: प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम्।

दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।1

अर्थात् भूमि जिसकी पादस्थानीय और अंतरिक्ष उदर के समान है तथा द्युलोक जिसका मस्तक है, उन सबसे बड़े ब्रह्म को नमस्कार है।

यहाॅं पर ब्रह्म परमेश्वर को नमस्कार कर प्रकृति के अनुसार चलने का निर्देश दिया गया है। वेदों के अनुसार प्रकृति एवं पुरुष का संबंध एक- दूसरे पर आधारित है। ऋग्वेद में प्रकृति का मनोहारी चित्रण हुआ है वहाॅं प्राकृतिक जीवन को ही सुख- शांति का आधार माना गया है। किस ऋतु में कैसा रहन- सहन हो, क्या खान-पान हो क्या सावधानियाॅं हों, इन सब का सम्यक् वर्णन है।

पर्यावरण को अनेक वर्गों में बाॅंटा जा सकता है । यथा- भूमि, जल, वायु, ध्वनि, खाद्य, वनस्पति, वन संपदा आदि।

भूमि संरक्षण

'माता भूमि: पुत्रो अहं पृथिव्या:'2

मानव साहित्य में प्रथम बार भूमि को माता बताकर अपने आपको उसका पुत्र अथर्ववेद के भूमि सूक्त में बताया गया है। मातृभूमि की धारणा का यह प्रथम उद्गार है। इस राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत सूक्त में विविध रूपा वसुंधरा की अनेक सुंदर तथा कृतज्ञतापूर्ण शब्दों में स्तुति की गई है। वह विभिन्न औषधि एवं वनस्पतियों से सब प्राणियों का भरण- पोषण उसी प्रकार करती है जिस प्रकार कोई माता दूध से अपने शिशु का। भूमि अटल है, दृढ़ है, अपने शिशुओं के लिए सब कुछ सहन करती है। पृथ्वी रत्नगर्भा है, प्राणिमात्र के लिए ऊर्जा का महान स्रोत है। यह ऊर्जा और दृढ़ता मनुष्य को सतत दृढ़ और स्वतंत्र रहने की प्रेरणा देती रहती है ।

भूमि सबके लिए समान है, सबको समता का व्यवहार सिखाती है। भूमि से बार-बार यही प्रार्थना की गई है कि वह सब प्रकार की सुरक्षा प्रदान करें, दीर्घायु प्रदान करें, धन-धान्य से संपन्न तथा औषधि रस, गोरस,जल आदि से समृद्ध होकर सभी प्राणियों को सुखी बनाएं ।

नानावीर्या औषधीर्या बिभर्ति पृथिवी न: प्रथतां राध्यतां न: ।3

जो विविध शक्ति वाली औषधियों को धारण करती है, वह पृथ्वी हमारे लिए सिद्ध हो ।

वर्तमान में युगीन संदर्भ बिगड़ गए हैं। दीवांध मानव की धमाचौकड़ी में आकंठमग्न समाज से क्षुब्ध, सुलगती धुआं देती धरती की आह, उसकी पीड़ा, उसका छलनी हृदय कौन देख रहा है। दूर-दूर तक लंबी-लंबी मीनारों को देखकर धरित्री के छलनी हुए हृदय की पीड़ा को समझा जा सकता है। वृक्षों की स्वच्छ, सुरभित वायु के अभाव के कारण आज का व्यक्ति वातानुकूलित कमरों में कैद हो चुका है।। आने वाले समय में यह वृक्ष भी हमारे लैपटॉप पर ही नज़र आएंगे।

प्रकृति अथवा धरित्री का अंधाधुंध दोहन और प्रयोग दर प्रयोग बहुत सी आने वाली विपत्तियों का कारण तो है ही साथ ही वे वर्तमान विसंगतियों का कारण भी है। आज सबसे बड़ी आवश्यकता है, हमारी धरती माॅं की सुरक्षा की, उसका अस्तित्व संकट में है जहाॅं आज पुत्र अपनी माॅं की अवहेलना कर रहा है, वहीं मनुष्य अपनी मातृभूमि को विस्मृत और तिरस्कृत कर रहा है। आज ज़रूरत है कि हम सभी इस भूमाता के आहत हृदय को अपने शुभ कर्मों से पीड़ा मुक्त करें।

वायु संरक्षण

सजीव जगत् के लिए पर्यावरण की रक्षा में वायु की स्वच्छता का प्रमुख स्थान है। बिना प्राणवायु के क्षण भर भी जीवित रहना संभव नहीं है। ईश्वर ने प्राणी जगत् के लिए संपूर्ण पृथ्वी के चारों ओर वायु का सागर फैला रखा है। हमारे शरीर के अंदर रक्त वाहिनियों में बहता हुआ रक्त बाहर की तरफ दबाव डालता रहता है, यदि इसे संतुलित नहीं किया जाए तो शरीर की सभी धमनियाॅं फट जाएंगी तथा जीवन नष्ट हो जाएगा। वायु का सागर इससे हमारी रक्षा करता है। पेड़- पौधे ऑक्सीजन देकर क्लोरोफिल की उपस्थिति में इनमें से कार्बन डाईऑक्साइड अपने

लिए रख लेते हैं और ऑक्सीजन हमें देते हैं। इस प्रकार पेड़- पौधे वायु की शुद्धि द्वारा हमारी प्राण रक्षा करते हैं।

वायु की शुद्धि जीवन के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस तत्व को यजुर्वेद में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है-

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देव:।

पथो अनक्तु मध्वा घृतेन ।।4.

अर्थात् उत्तम गुण वाले पदार्थों में उत्तम गुण वाला प्रकाशरहित तथा सबको प्राप्त होने वाला जो वायु शरीर में नहीं गिरता वह कामना करने योग्य मधुर जल के साथ श्रोत्रादि मार्ग को प्रकट करे, उसको तुम जानो।

हज़ारों वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजों को यह ज्ञान था कि वायु कई प्रकार के गैसों का मिश्रण है, जिनके अलग-अलग गुण एवं अवगुण हैं , इनमें ही प्राणवायु (ऑक्सीजन) भी है जो जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है-

यददौ वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हित:।

ततो नो देहि जीवसे।।5

अर्थात् इस वायु के गृह में जो यह अमृत की धरोहर स्थापित है, वह हमारे जीवन के लिए आवश्यक है।

शुद्ध वायु कई रोगों के लिए औषधि का काम करती है। ऋग्वेद में बताया गया है कि शुद्ध वायु तपेदिक जैसे घातक रोगों के लिए औषधि रूप है।6 हृदय रोग, तपेदिक तथा निमोनिया आदि रोगों में वायु को बाहरी साधनों द्वारा लेना ज़रूरी है।

वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे।

प्र ण आयूंषि तारिषत्।।7

अर्थात् याद रखिए शुद्ध ताज़ी वायु अमूल्य औषधि है, जो हमारे हृदय के लिए दवा के समान उपयोगी एवं आनंददायक है।वह उसे प्राप्त कराता है और हमारी आयु को बढ़ाता है।

जल संरक्षण

जल संरक्षण हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। नदियों का जल सबसे अधिक रक्षणीय है क्योंकि वे क्षेत्रों को सींचती हैं, भोजन अन्नादि को उत्पन्न करके प्राणि मात्र को तृप्त करती हैं । बहता हुआ जल वैसे भी शुद्ध रहता है अतः उसमें दूषित पदार्थ विसर्जित नहीं करना चाहिए। वैदिक ऋषियों की नदियों के लिए यह विचारधारा इसलिए भी बनी होगी कि वैदिक सभ्यता का विकास नदियों के तटों पर हुआ अतः नदियों के संरक्षण की बात स्वाभाविक ही लगती है किंतु उसके साथ ही वैदिक विचारों में समुद्र के जल को भी दोषमुक्त करने के लिए आदेश दिया गया है। वर्षा का जल सबसे निर्मल माना गया है यह जल प्रकृति की विशेष दिन है उसे यज्ञ आदि द्वारा बढ़ाना चाहिए और इसे संरक्षित करना चाहिए वर्तमान में हमने वर्षा के जल को अम्लीय बना दिया है। वर्षा का जल रोगनाशक भी है, कल्याणकारी है इसके संरक्षण हेतु कृत्रिम जलाशयों का उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है। वैदिक युग में जल संरक्षण की प्रथा प्रचलित थी। जल का उपयोग, संरक्षण, बांध निर्माण, जलाशयों के किनारों पर वृक्षारोपण, वर्षा के जल का संग्रहण तथा वार्षिकी जल प्राप्ति हेतु यज्ञ कार्य यह सब सकारात्मक क्रियाएं तो थीं ही, साथ ही जल को यदि दूषित कोई करता था तो स्पष्ट निर्देश थे कि 'मा आपो हिंसी:' जल को नष्ट मत करो।

ऋग्वेद में ऋषियों ने नदियों को माता के समान माना है और उनकी पूजा की है। उनसे प्रार्थना की गई है-

जो नदियां प्रवण देश अर्थात् प्रवाह की दिशा में प्रवाहमान है, जो उच्च निम्न प्रदेशों में होकर बहती हैं जो जल शून्य अथवा आप्लावित संसार को तृप्त करती हैं वे सभी दिव्य नदियाॅं शिपद रोग से बचाकर कल्याणकारी बनें । सभी नदियाॅं हमारी रक्षा करें, नदियों का जल सींचने योग्य,पीने योग्य एवं कृषि आदि के उपयोग की गुणवत्ता युक्त बना रहे।8

एक ऋचा में कहा गया है कि जल से ही देखने- सुनने एवं बोलने की शक्ति प्राप्त होती है । भूख, दुःख, चिंता, मृत्यु के त्यागपूर्वक अमृत(आनंद) प्राप्त होता है-

आदित्पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ्मासाम्।

मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा व:।।9

तात्पर्य यह है कि देखने- सुनने एवं बोलने की शक्ति बिना पर्याप्त जल के उपयोग के नहीं आती। जल ही जीवन का आधार है। अधिकांश जीव जल में ही जन्म लेते हैं और उसी में रहते हैं। हे जलधारको! मेरे निकट आओ। तुम अमृत हो।

शुद्ध जल मनुष्य को दीर्घायु प्रदान करने वाला, प्राणों का रक्षक तथा कल्याणकारी है। यह भाव निम्न ऋचा में देखिए-

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।

शं योरभि स्त्रवन्तु न:।।10

अर्थात् सुखमय जल हमारे अभीष्ट की प्राप्ति के लिए तथा रक्षा के लिए कल्याणकारी हो । जल हम पर सुख- समृद्धि की वर्षा करें।

जल चेहरे का सौंदर्य तथा कोमलता और कांति बढ़ाने में औषधिरूप है। भोजन के पाचन में अधिक जल पीना आवश्यक है।

ध्वनि प्रदूषण

यद्यपि संगीत भक्ति पूजा का एक महत्वपूर्ण अंग है परंतु दुख की बात है कि आजकल ध्वनि के साधन का दुरुपयोग हो रहा है। ध्वनि प्रचारक यंत्रों के दुरुपयोग के कारण सिरदर्द, तनाव, अनिद्रा आदि फैल रहा है। वेदों में भी कहा गया है कि हम स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक तीव्र ध्वनि से बचें। आपस में वार्ता करते समय धीमे एवं मधुर बोलें -

अनुव्रत: पितु:पुत्रो मात्रा भवतु संमना:।

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्।।11

अर्थात् पुत्र अपने पिता के अनुकूल कर्म करने वाला हो और अपनी माता के साथ समान विचार से रहने वाला हो पत्नी अपने पति से मधुरता तथा सुख से युक्त वाणी बोले।

भाई भाई से बहन बहन से अथवा परिवार में कोई भी एक दूसरे से द्वेष न करें। सब सदस्य एकमत और एक मति होकर आपस में शांति से भद्र पुरुषों के समान मधुरता से बातचीत करें।

अथर्ववेद के मधुविद्या सूक्त के ऋषि अथर्वा लिखते हैं-

वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दृश:।12

अर्थात् हमारी वाणी भी मधुरतायुक्त हो जिससे हम सबके प्रेमास्पद बन जाएं।

यदि प्रत्येक व्यक्ति आपसी द्वेष भावना से दूर रहकर प्रत्येक के साथ माधुर्य युक्त व्यवहार करेगा सम्यक् वाणी का प्रयोग करेगा तो व्यर्थ के वाद विवाद से मुक्ति मिलेगी।

खाद्य प्रदूषण

वेदों में खाद्य के संबंध में भी वैज्ञानिक आधार दिए गए हैं। छांदोग्योपनिषद् के षष्ठ प्रपाठक में बताया गया है कि मनुष्य जो भी भोजन ग्रहण करता है उसका सूक्ष्म अंश मन बन जाता है जो जल ग्रहण करता है उसका सूक्ष्मांश प्राण एवं तेजस पदार्थ का सूक्ष्मांश वाणी बन जाता है इसलिए खाद्य पदार्थ ग्रहण करते समय भी सावधानी रखनी चाहिए।

मनुष्य पाचन शक्ति से भोजन को भलीभांति स्वयं पचाए, जिससे वह शारीरिक और आत्मिक बल बढ़ाकर उसे सुखदायक बना सके। इसी प्रकार पेय पदार्थों जैसे जल दुग्ध इत्यादि के विषय में भी उल्लेख है-

यत् पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संपिब:।13

मैं जो कुछ पीता हूॅं, यथाविधि पीता हूॅं, जैसे यथाविधि पीने वाला समुद्र पचा लेता है। दूध जल जैसे पेय पदार्थों को हम उचित रीति से ही पिया करें जो कुछ खाएं अच्छी तरह चबाकर

खाएं। अन्यत्र भी वर्णित है कि जो भी खाद्य पदार्थ हम खाएं वह यथाविधि खाएं, जल्दबाजी न करें। खूब चबा- चबाकर शांतिपूर्वक खाएं । जैसे यथाविधि खाने वाला समुद्र सब कुछ पचा लेता है ।हम शाक फल अन्नादि रस वर्धक खाद्य पदार्थ ही खाएं।एक सामाजिक प्राणी होने के कारण हमारा कर्तव्य है कि हम अपने पर्यावरण को स्वच्छ रखें और प्रदूषित होने से बचाएं। इसके लिए सभी मनुष्यों को अपने पर्यावरण के प्रति जागरूक होना अत्यंत आवश्यक है तभी हम अपने पर्यावरण को बचा सकते हैं। पर्यावरण की रक्षा के लिए सरकार द्वारा कुछ अधिनियम भी बनाए गए हैं जैसे वायु अधिनियम 1981 जल अधिनियम 1974 और हमारे प्रधानमंत्री ने स्वच्छ भारत अभियान चलाकर लोगों को जागरूक करने का भी प्रयास किया है। आज से हज़ारों वर्ष पूर्व हमारे वैदिक ऋषियों ने हमें सचेत किया हमें उसकी रक्षा करनी चाहिए। प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण व्यवहार, प्राकृतिक संसाधनों का ज्ञान एवं विवेकपूर्ण उपयोग ही वैदिक साहित्य की पर्यावरण शिक्षा है । आज पर्यावरण संकट की स्थिति में ऐसे उत्साही, कर्मठ साधकों की आवश्यकता है जो शिक्षा से आगे बढ़कर प्रत्येक जन को पर्यावरण संरक्षण हेतु आह्वान करें।

संदर्भ

1. अथर्ववेद 10/7/32

2. अथर्ववेद 10/1/12

3. अथर्ववेद 10/1/2

4. यजुर्वेद 27/12

5. ऋग्वेद 10/186/3

6. ऋग्वेद 10/137/4

7. ऋग्वेद10/186/1

8 .ऋग्वेद7/50/4

9.अथर्ववेद 3/13/6

10.ऋग्वेद 10/9/4

11.अथर्ववेद 3/30/2

12.अथर्ववेद 1/34/3

13.अथर्ववेद6/135/2

धार्मिक ग्रंथो में भौगोलिक ज्ञान

प्रो. राजश्री विभूते
भूगोल विभाग
महाराजा भोज शा.स्व .स्ना. महाविधालय धार

प्राचीन भारतीय साहित्य एवं ज्ञान बहुत ही समृद्ध है | प्राचीन साहित्य में हमें वेद , उपनिषद, ग्रंथ, पुराण आदि सभी ग्रन्थ में साहित्य व ज्ञान से भरा एवं परिपूर्ण है | हिंदू धर्म में सबसे प्राचीन ग्रंथ संस्कृत भाषा में है | प्राचीन भारतीय साहित्य समृद्ध है इसे जनमानस में लोकप्रिय करने के लिए तथा युवा पीढ़ी को अपने समृद्ध साहित्य अवगत कराने के लिए नई शिक्षा नीति में हमारे ग्रंथ रामचरितमानस तथा वेदों का अध्ययन पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया जो विद्यार्थियों के लिए बहुत ही ज्ञानवर्धक एवं उपयोगी है |

नई शिक्षा नीति का उद्देश्य '' भारत के वैश्विक ज्ञान को महाशक्ति '' बनना है | वैदिक काल में भूगोल से संबंधित ज्ञान वैदिक रचनाओं में मिलता है जिसमें ब्रह्मांड की उत्पत्ति, पृथ्वी की उत्पत्ति, वायु ,जल सूर्य ग्रहण , चन्द्र ग्रहण के बारे में जानकारी वेदों, पुराणों, व अन्य ग्रंथो में मिलती है |

प्राचीन भारत के भौगोलिक ज्ञान सिंधु घाटी सभ्यता , वेद – ऋग्वेद , अथर्ववेद ,सामवेद यजुर्वेद , उपनिषद , महाग्रंथ - रामायण एवं महाभारत में मिलती है | प्राचीन भूगोल वेताओं की रचना वराह मिहिर , आर्य भट्ट ,ब्रह्मगुप्त ,भास्कराचार्य , ने गणितीय भूगोल में अपना योगदान दिया था |

खगोलीय ज्ञान - प्राचीन काल में ब्रह्मांड विज्ञान के क्षेत्र में भारत में बहुत उन्नति करने की बहुत से ग्रंथों में पृथ्वी व अंतरिक्ष के बारे में जानकारी मिलती है जैसे - ऋतु परिवर्तन, रात दिन, सौर वर्ष , सौर मास ,नक्षत्र की चाल , सूर्य नक्षत्र की गणना की गई थी | भारतीय विद्वानों ने खगोल विज्ञान में बहुत उन्नति की आर्य भट्ट, वराहमिहिर , ब्रह्म गुप्त आदि गणितज्ञ थे |

पुराणों के अनुसार पर्वत श्रृंखलाएं पामीर गांठ की चारों ओर से जाती है वहां पर्वत माल्यावन पर्वत, निषाद पर्वत, नील पर्वतों के बारे में मध्य में बताया गया है कमल की पंखुड़ियां की बातें उसके चारों ओर अन्य पर्वत हैं | महाभारत महाकाव्य में ज्वालामुखी पर्वत के उभार की बारे में बताया गया है पुराणों में पृथ्वी महासागरों के महासागर के एक वृद्ध नौका के रूप में तैरती ब्रह्मा जी ने पृथ्वी को सात दीपों में विभक्त किया है | जैसे - जम्बू , पुष्कर, शक, कुश , कौच ,पलक्ष , शालमली आदि | प्राचीन भारतीय ग्रंथो में पृथ्वी की आयु दो अरब वर्ष मानी गई थी |

रामायण में सूर्य ग्रहण एवं चंद्र ग्रहण के बारे में बताया गया है और इसका कारण राहु एवं केतु को बताया गया है | ऋग्वेद में नदियों के बारे में बताया गया है सिंधु नदी, चिनाव नदी, झेलम नदी , सरस्वती नदी आदि नदियों का वर्णन मिलता है | पुराण में यमुना , नर्मदा ,गोदावरी , कृष्णा, कावेरी आदि नदियों का वर्णन मिलता है |

वायुमंडलीय ज्ञान - वेद के अध्ययन से यह पता चलता है कि आर्यों को वायुमंडल का ज्ञान था | उन्होंने वर्ष में छ; ऋतुओं को बांटा तथा बादलों के तीन प्रकार बताएं हैं और सात प्रकार की पवनो की चर्चा की | भारतीय लोग सूर्य ,अग्नि ,इंद्र वायु को देवता मानकर पूजा करते है |

सातवीं सदी में ब्रह्म गुप्त ने ब्रह्म सिद्धांत की रचना की भास्कराचार्य के सिद्धांत शिरोमणि में जलवायु एवं मौसम के बारे में जानकारी मिलती है |

जलमंडलीय ज्ञान - सामवेद व यजुर्वेद में महासागरों की संख्या चार बताई गई है |

सामवेद में जल के ऊपर उठने के बारे में बताया गया है | जिसमें ज्वार भाटा की कल्पना की गई | महासागरों में विभिन्न रत्न जैसे- मूँगा, मोती, व अन्य रत्नों के बारे में बताया गया

पुराणों के अनुसार पर्वत श्रृंखलाएं पामीर गांठ की चारों ओर से जाती है | वहां पर्वत माल्यावन पर्वत, निषाद पर्वत, नील पर्वतों के बारे में मध्य में बताया गया है कमल की पंखुड़ियां की बातें उसके चारों ओर अन्य पर्वत हैं |

समय के लोग खेती व्यापार लघु उद्योग तथा आवागमन के क्षेत्र में भी व्यवसाय में कार्यरत तथा शिक्षा के केंद्र में भी बहुत उन्नति की थी तक्षशिला और नालंदा इसके उदाहरण इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्राचीन काल में भूगोल की सभी शाखों का विकास हुआ था |

मानव भूगोल - वैदिक संस्कृति मे ग्रामीण संस्कृति देखने को मिलती है | उसे समय के मानव लोग खेती, व्यापार ,लघु उद्योग ,तथा आवागमन के क्षेत्र में भी व्यवसाय में कार्यरत थे | शिक्षा के केंद्र में भी बहुत उन्नति की थी | जैसे तक्षशिला और नालंदा इसके उदाहरण है | इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्राचीन काल में भूगोल की सभी शाखाओं का विकास हुआ था | स्नातक पाठ्यक्रम भूगोल में प्राचीन भारतीय साहित्य की भी जोड़ा गया है |

निष्कर्ष – हमारा प्राचीन साहित्य बहुत ही समृद्ध था | जिसने हमें प्राचीन काल से ही वैज्ञानिक आधार प्रदान किया जो वर्तमान में हमें वैज्ञानिक द्रष्टिकोण समझने में सहायक रहा है |

कुंजी शब्द – KEY WORD

वैश्विक = विश्व का

, पामीर = पर्वत का नाम

ब्रह्म सिद्धांत – ब्रह्मांड की जानकारी

वैदिक संस्कृति – वैदिक काल की संस्कृति

माल्यावन - मेरु पर्वत

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

सक्सेना जे .पी. – भौगोलिक विचारधारा एवं विधि तंत्र

जैन एस .एम. - भौगोलिक विचारधारा एवं विधि तंत्र

Google - से जानकारी

विभिन्न मानव कल्याणकारी क्षेत्रों, जैसे दर्शन, ध्वन्यात्मक अनुष्ठान, व्याकरण, खगोलविज्ञान, अर्थशास्त्र, सांख्य सिद्धांत, तर्क, जीवन विज्ञान, आयुर्वेद, ज्योतिष और संगीत, में प्राचीन भारत ने कीर्तिमान स्थापित करके मानव जाति की उन्नति में अत्यधिक योगदान दिया है। प्राचीन भारतीयों द्वारा अविस्कृत सिद्धांतों और तकनीकीयों ने आधुनिक विज्ञान और पौद्योगिकी के मूल को मजबूत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वर्तमान में कुछ इन नवीन योगदानों को अपनाया जा रहा है, लेकिन कुछ अभी भी अज्ञात है।
हमारे भारत वर्ष ने विश्व को कई तरह से लाभ दिया है। भारत ने ही बौद्ध, जैन और सिक्ख धर्म विश्व भर में फैलाए। भारत ने पूरी दुनिया को गुरु-शिष्य परंपरा दी, जो वर्षों तक चलती रही, जिससे लोगों ने पुराने ज्ञान को अपनाया और उससे नया ज्ञान बनाया। नतीजतन, आज की दुनिया में भी भारतीय ज्ञान धारा लागू होती है, जो तनाव प्रबंधन स्थिरता जैसे मुद्दों से निपटने के लिए व्यावहारिक सुझाव देती है। यह ज्ञान का एक बड़ा भंडार है। इससे लोगों के समुदायों और मानवता को बढ़ाया जा सकता है।
यही कारण है कि विश्व धरोहर की विपुल सम्पदा को न केवल संरक्षित और अगली पीढ़ी के लिए बचाया जाना चाहिए, बल्कि इसे शिक्षा प्रणाली के माध्यम से विकसित और नवीनतम उपयोग में लाया जाना चाहिए।
महान ज्ञान ही एक स्वस्थ समाज को ऊपर ले जाता है। मनुष्य सभी ग्रहों से श्रेष्ठ है। इसलिए श्रेष्ठों का काम भी अच्छा और लाभदायक होना चाहिए।

सन्दर्भ

1. पंडित मधुसुदन ओझा, भारतवर्ष: द इंडियन नरेटिव ऐज टोल्ड इन इन्द्रविजयाह, रूपा, 2017।
2 नीतिशतकम्
3 मनुस्मृति
4 दर्शनकोश, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1980, पृष्ठ 226, ISBN 5-010009072
5 ईशोपनिषद
6 जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ॰ 667
7 सत्यार्थ प्रकाश, प्रकाशन किरण, 2015 ISBN 13:987-8189068783
8 मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, पाणिनी कालीन भारतवर्ष, पृष्ठ २।

भारतीय संस्कृति तथा ज्ञान परंपरा में पर्यावरण चेतना

कविता पॉल

(सहा.प्राध्यापक)

महाराजा भोज शासकीय स्नाक्तकोतर महाविद्यालय, धार

मानव पर्यावरण का अभिन्न अंग है क्योंकि मानव का अस्तित्व पर्यावरण पर ही निर्भर करता है | धरा के सभी जैविक-अजैविक कारक मिलकर पर्यावरण का सृजन करते हैं, और सभी कारक आपस में सामंजस्य से करके एक दूसरे के साथ मिलकर अपना अपना अस्तित्व सजोए रखते हैं, इन सब में सर्वोपरि रचना मनुष्य की है जो अपनी बौद्धिक क्षमता से प्रकृति के साथ मिलकर निरंतर विकास करता आ रहा है | वर्तमान में मनुष्य ने विकास का उत्कृष्ट स्तर तो प्राप्त कर लिया है किंतु कहीं ना कहीं पर्यावरण को क्षतिग्रस्त भी किया है यदि हम देखें प्राचीन काल में मनुष्य विकास के साथ-साथ प्रकृति को भी संरक्षित करके चलता था जैसे भारतीय परंपरा के इतिहास में यदि देखा जाए तो पर्यावरण संरक्षण के अद्भुत सूत्रों एवं उपायों को संभव किया जाता था | प्रकृति के तत्व वायु, जल, भूमि, वृक्ष के महत्व को समझने के लिए भारतीय संस्कृति में वृक्षों की पूजनीय मानकर उनकी पूजा की जाती थी जैसे पीपल का वृक्ष, वट वृक्ष आदि पूजा करके संरक्षण दिया जाता था क्योंकि वृक्ष पर्यावरण बचाने तथा सुधारने का एकमात्र साधन होते हैं इसी प्रकार जल संरक्षण की दृष्टि से समुद्र नदी को भी पूजन योग्य माना गया है भारत में प्राचीन काल से ही गंगा, सिंधु, सरस्वती, यमुना, गोदावरी, नर्मदा आदि नदियों को पवित्र मानकर पूजा की जाती है ताकि नदियों का जल स्वच्छ औरअप्रदूषित रखा जा सके |

धरती को भी माता का स्थान दिया गया था ताकि मिट्टी की उर्वरता का महत्व को समझा जा सके और मृदा प्रदूषण बंजर भूमि आदि समस्याओं से बचा जा सके| प्राचीन काल में अर्थवेद में जल को अमृत कहा गया है| जल प्राणियों का प्राण है और सभी प्रकार की औषधियां जल में सुरक्षित रहती हैं| मनु ने भी जल को भौतिक शरीर की शुद्धि का सर्वाधिक सर्वोत्तम साधन माना है तथा जल स्रोतों एवं जलाशयों को दूषित करने वाले व्यक्ति को दंडित करने का प्रावधान रखा गया था| वायु की शुद्धि के लिए भारतीय जीवन शैली में यज्ञ की व्यवस्था है ,जो वायुमंडलीय प्रदूषण को दूर कर पर्यावरण को शुद्ध रखता है| यज्ञ से मेघ और मेघ से वर्षा होती है| गीता में भी यज्ञ की महत्वता को बताया गया है| वायु के महत्व के लिए वायु को पवन देवता के रूप में पूजा करने की परंपरा प्राचीन काल से ही रही है| प्राचीन भारत में वृक्षों के संरक्षण और संवर्धन को बहुत महत्व दिया गया है|प्राचीन भारत में प्राचीन सभ्यता तथा अध्यात्म का विकास वनों में ही स्थित ऋषि मुनियों के आश्रम से हुआ है| ऋषि मुनि वनों में पर्ण कुटियों में ही निवास करते थे तथा समस्त प्रकार की शिक्षा वनों में ही प्रदान करते थे| वृक्ष, पर्वत, झरने, पशु, पक्षी, नदियां,फल, फूल सभी के साथ पारस्परिक जीवन व्यतीत करते थे तथा प्रकृति के महत्व की को जीवंत रूप में सीखते थे | वेद पुराणों में वन्यजीवों की गाथा को भी गाथाओं में सम्मिलित करके उनके महत्व को समझाया गया है मनुस्मृति में जैव विविधता को बचाने के लिए तथा संरक्षित करने के दृष्टांत देखने को

मिलते हैं पर्यावरण संरक्षण से वायु जल और भूमि प्रदूषण कम होता है और जैव विविधता के लिए भी पर्यावरण संरक्षण महत्वपूर्ण है पर्यावरण स्वच्छ होने से जैव जगत प्रदूषण से बचा रहता है|प्राचीन इतिहास में सिन्धु सरस्वती सभ्यता में पर्यावरण संरक्षण के उल्लेख मिलते है जिनमें नगर नियोजन, दुर्ग, साफ-सफाई वृक्ष एवं पौधों की पूजा। आर्य सभ्यता में भी सतत् पर्यावरणीय चेतना की जागरूकता दिखलाई पड़ती है। 'अरण्यानी जो जंगलों की रानी है वो वैदिक ऋषियों के द्वारा संपोषित होती है। इस प्रकार भारत के सभी आदि मनुष्यों ने प्रकृति और उसके उपादानो , पशु पक्षियों, जीव जंतुओं आदि को आध्यात्मिक रूप देकर भारतीय धर्म और संस्कृति से पर्यावरण को अभिनय रूप से जोड़कर पर्यावरण चेतना जागरूक करने का प्रयास किया है|

कुंजी शब्द –जैविकअजैविक –सजीव निर्जीव ,बोद्धिक क्षमता –ज्ञान ,पर्यावरण संरक्षण – पर्यावरण बचाव एवं सुधार ,मेघ –बादल ,दुर्ग- किला |

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि –1,डा कुमार राकेश –प्राचीन भारत में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा

2. शोध संचयन

धार्मिक ग्रंथो में भौगोलिक ज्ञान

प्रा. राजश्री विभूते
भूगोल विभाग
महाराजा भोज शा.स्व .स्ना. महाविधालय धार

प्राचीन भारतीय साहित्य एवं ज्ञान बहुत ही समृद्ध है | प्राचीन साहित्य में हमें वेद , उपनिषद, ग्रंथ, पुराण आदि सभी ग्रन्थ में साहित्य व ज्ञान से भरा एवं परिपूर्ण है | हिंदू धर्म में सबसे प्राचीन ग्रंथ संस्कृत भाषा में है | प्राचीन भारतीय साहित्य समृद्ध है इसे जनमानस में लोकप्रिय करने के लिए तथा युवा पीढ़ी को अपने समृद्ध साहित्य अवगत कराने के लिए नई शिक्षा नीति में हमारे ग्रंथ रामचरितमानस तथा वेदों का अध्ययन पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया जो विद्यार्थियों के लिए बहुत ही ज्ञानवर्धक एवं उपयोगी है |

नई शिक्षा नीति का उद्देश्य '' भारत के वैश्विक ज्ञान को महाशक्ति '' बनना है | वैदिक काल में भूगोल से संबंधित ज्ञान वैदिक रचनाओं में मिलता है जिसमें ब्रह्मांड की उत्पत्ति, पृथ्वी की उत्पत्ति, वायु ,जल सूर्य ग्रहण , चन्द्र ग्रहण के बारे में जानकारी वेदों, पुराणों, व अन्य ग्रंथो में मिलती है |

प्राचीन भारत के भौगोलिक ज्ञान सिंधु घाटी सभ्यता , वेद – ऋग्वेद , अथर्ववेद ,सामवेद यजुर्वेद , उपनिषद , महाग्रंथ - रामायण एवं महाभारत में मिलती है | प्राचीन भूगोल वेताओं की रचना वराह मिहिर , आर्य भट्ट ,ब्रह्मगुप्त ,भास्कराचार्य , ने गणितीय भूगोल में अपना योगदान दिया था |

खगोलीय ज्ञान - प्राचीन काल में ब्रह्मांड विज्ञान के क्षेत्र में भारत में बहुत उन्नति करने की बहुत से ग्रंथों में पृथ्वी व अंतरिक्ष के बारे में जानकारी मिलती है जैसे - ऋतु परिवर्तन, रात दिन, सौर वर्ष , सौर मास ,नक्षत्र की चाल , सूर्य नक्षत्र की गणना की गई थी | भारतीय विद्वानों ने खगोल विज्ञान में बहुत उन्नति की आर्य भट्ट, वराहमिहिर , ब्रह्म गुप्त आदि गणितज्ञ थे |

पुराणों के अनुसार पर्वत श्रृंखलाएं पामीर गांठ की चारों ओर से जाती है वहां पर्वत माल्यावन पर्वत, निषाद पर्वत, नील पर्वतों के बारे में मध्य में बताया गया है कमल की पंखुड़ियां की बातें उसके चारों ओर अन्य पर्वत हैं | महाभारत महाकाव्य में ज्वालामुखी पर्वत के उभार की बारे में बताया गया है पुराणों में पृथ्वी महासागरों के महासागर के एक वृद्ध नौका के रूप में तैरती ब्रह्मा जी ने पृथ्वी को सात दीपों में विभक्त किया है | जैसे - जम्बू , पुष्कर, शक, कुश , कौच ,पलक्ष , शालमली आदि |

प्राचीन भारतीय ग्रंथो में पृथ्वी की आयु दो अरब वर्ष मानी गई थी |
रामायण में सूर्य ग्रहण एवं चंद्र ग्रहण के बारे में बताया गया है और इसका कारण राहु एवं केतु को बताया गया है | ऋग्वेद में नदियों के बारे में बताया गया है सिंधु नदी, चिनाव नदी, झेलम नदी , सरस्वती नदी आदि नदियों का वर्णन मिलता है | पुराण में यमुना , नर्मदा ,गोदावरी , कृष्णा, कावेरी आदि नदियों का वर्णन मिलता है |

वायुमंडलीय ज्ञान - वेद के अध्ययन से यह पता चलता है कि आर्यों को वायुमंडल का ज्ञान था | उन्होंने वर्ष में छ; ऋतुओं को बांटा तथा बादलों के तीन प्रकार बताएं हैं और सात प्रकार की पवनो की चर्चा की | भारतीय लोग सूर्य ,अग्नि ,इंद्र वायु को देवता मानकर पूजा करते है | सातवीं सदी में ब्रह्म गुप्त ने ब्रह्म सिद्धांत की रचना की भास्कराचार्य के सिद्धांत शिरोमणि में जलवायु एवं मौसम के बारे में जानकारी मिलती है |

जलमंडलीय ज्ञान - सामवेद व यजुर्वेद में महासागरों की संख्या चार बताई गई है | सामवेद में जल के ऊपर उठने के बारे में बताया गया है | जिसमें ज्वार भाटा की कल्पना की गई | महासागरों में विभिन्न रत्न जैसे- मूँगा, मोती, व अन्य रत्नों के बारे में बताया गया पुराणों के अनुसार पर्वत श्रृंखलाएं पामीर गांठ की चारों ओर से जाती है | वहां पर्वत माल्यावन पर्वत, निषाद पर्वत, नील पर्वतों के बारे में मध्य में बताया गया है कमल की पंखुड़ियां की बातें उसके चारों ओर अन्य पर्वत हैं |

समय के लोग खेती व्यापार लघु उद्योग तथा आवागमन के क्षेत्र में भी व्यवसाय में कार्यरत तथा शिक्षा के केंद्र में भी बहुत उन्नति की थी तक्षशिला और नालंदा इसके उदाहरण इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्राचीन काल में भूगोल की सभी शाखों का विकास हुआ था |

मानव भूगोल - वैदिक संस्कृति मे ग्रामीण संस्कृति देखने को मिलती है | उसे समय के मानव लोग खेती, व्यापार ,लघु उद्योग ,तथा आवागमन के क्षेत्र में भी व्यवसाय में कार्यरत थे | शिक्षा के केंद्र में भी बहुत उन्नति की थी | जैसे तक्षशिला और नालंदा इसके उदाहरण है | इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्राचीन काल में भूगोल की सभी शाखाओं का विकास हुआ था | स्नातक पाठ्यक्रम भूगोल में प्राचीन भारतीय साहित्य की भी जोड़ा गया है |

निष्कर्ष – हमारा प्राचीन साहित्य बहुत ही समृद्ध था | जिसने हमें प्राचीन काल से ही वैज्ञानिक आधार प्रदान किया जो वर्तमान में हमें वैज्ञानिक द्रष्टिकोण समझने में सहायक रहा है |

कुंजी शब्द – KEY WORD

वैश्विक = विश्व का
, पामीर = पर्वत का नाम
ब्रह्म सिद्धांत – ब्रह्मांड की जानकारी
वैदिक संस्कृति – वैदिक काल की संस्कृति
माल्यावन - मेरु पर्वत

भारतीय ज्ञान परम्परा में भौगोलिक ज्ञान का महत्व

डॉ. लोकेश कुमार

अतिथि विद्वान (भूगोल)

शासकीय महाविद्यालय पीपलरावाँ, जिला देवास

सारांश:-

भौगोलिक ज्ञान प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति, धार्मिकता, और समाज व्यवस्था में गहराई से जुड़ा हुआ है। भारतीय धार्मिक ग्रंथों में भौगोलिक स्थानों का उल्लेख प्रमुखता से किया गया है। जैसे कि महाभारत और रामायण में तीर्थ स्थलों, नदियों, पर्वतों और जंगलों का विस्तृत वर्णन है। यह दर्शाता है कि इन स्थानों का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व था और भौगोलिक ज्ञान को पवित्र और आवश्यक माना गया था। नदियों का भारतीय सभ्यता में विशेष स्थान है। गंगा, यमुना, सरस्वती आदि नदियों को देवी रूप में पूज्य माना जाता है। ये नदियाँ कृषि, परिवहन और जल स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण थीं, जिससे भौगोलिक ज्ञान का विकास हुआ। भारतीय संस्कृति में तीर्थ यात्रा का विशेष महत्व है। इस यात्रा के लिए भौगोलिक ज्ञान आवश्यक था ताकि यात्री सुरक्षित और सफल यात्रा कर सकें। इससे प्राचीन काल में मार्गदर्शन और स्थानों का ज्ञान प्रचलित हुआ। भारतीय सभ्यता में भूकंप, बाढ़, सूखा आदि प्राकृतिक आपदाओं की जानकारी और उनसे निपटने के उपायों का ज्ञान भी महत्वपूर्ण था। ऋतुचक्र और मौसमी परिवर्तनों का ज्ञान कृषि और समाज की समृद्धि के लिए आवश्यक था। प्राचीन भारत में व्यापारिक मार्गों और समुद्री मार्गों का विस्तृत ज्ञान था। यह व्यापारिक गतिविधियों को संचालित करने और विभिन्न क्षेत्रों के साथ वाणिज्यिक संबंध स्थापित करने में सहायक था। भारतीय शिक्षा प्रणाली में भूगोल का अध्ययन एक महत्वपूर्ण भाग था। प्राचीन गुरुकुल प्रणाली में विद्यार्थियों को देश के विभिन्न भौगोलिक विशेषताओं का ज्ञान कराया जाता था। भास्कराचार्य, वराहमिहिर और आर्यभट्ट जैसे विद्वानों ने खगोल विज्ञान और भूगोल में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन विद्वानों ने ग्रहों, नक्षत्रों और पृथ्वी के संरचना का अध्ययन किया और इसे अपने ग्रंथों में वर्णित किया। भारतीय ज्ञान परम्परा में भौगोलिक ज्ञान न केवल धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण था, बल्कि यह समाज की आर्थिक, शैक्षणिक और वैज्ञानिक प्रगति में भी योगदान करता था। यह ज्ञान आज भी भारतीय समाज में महत्वपूर्ण बना हुआ है और आधुनिक शिक्षा प्रणाली में भूगोल का अध्ययन जारी है।

कुंजी शब्द:- भारतीय सभ्यता, सांस्कृतिक दृष्टिकोण, भौगोलिक ज्ञान, धार्मिक साहित्य, भौगोलिक परिस्थितियाँ

विषय प्रवेश:-

भारतीय ज्ञान परम्परा में भूगोल का विशेष महत्व रहा है। भारतीय विद्वानों ने प्राचीन काल से ही भूगोल का गहन अध्ययन किया और इसे अपने ग्रंथों में विस्तृत रूप से वर्णित किया। भारतीय भूगोल को हम प्राचीन भारतीय ग्रंथों, पुराणों, और विभिन्न धार्मिक साहित्य में वर्णित विवरणों के माध्यम से समझ सकते हैं। प्राचीन भारत में भूगोल केवल भौतिक स्थलाकृति के अध्ययन तक सीमित नहीं था, बल्कि इसमें मानव जीवन, समाज, संस्कृति, धर्म और राजनीति के विभिन्न पहलुओं एवं ब्रह्मांडीय संरचनाओं का गहन अध्ययन भी शामिल है। भारतीय भौगोलिक परंपरा को वेदों, पुराणों, महाकाव्यों और अन्य प्राचीन ग्रंथों में देखा जा सकता है।

वेदों में भूगोल:-

ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद आदि प्राचीन वेदों में भूगोल का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में नदियों, पर्वतों और विभिन्न भू-भागों का उल्लेख मिलता है। इसमें सरस्वती, गंगा, यमुना, सिन्धु आदि प्रमुख नदियों का वर्णन है। वेदों में नदियों और पहाड़ों को देवताओं के रूप में भी पूजा गया है।

पुराणों में भूगोल:-

पुराणों में पृथ्वी के विभिन्न क्षेत्रों का वर्गीकरण, सप्तद्वीप, सप्तसमुद्र, पर्वतों, नदियों एवं महासागरों आदि का वर्णन किया गया है। उदाहरण के लिए, विष्णु पुराण में सप्तद्वीपों (जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलीद्वीप, कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप, और पुष्करद्वीप) का वर्णन मिलता है। वायु पुराण, मत्स्य पुराण और भागवत पुराण में भूगोल से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। ये ग्रंथ भारतवर्ष को नौ क्षेत्रों में विभाजित करते हैं और हर क्षेत्र की विशेषताओं का वर्णन करते हैं। भूगोल का यह दृष्टिकोण भौतिक और आध्यात्मिक दोनों स्तरों पर विस्तृत है। स्कंद पुराण में तीर्थों का विस्तृत वर्णन मिलता है, जो धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है।

महाभारत और रामायण में भूगोल:-

महाभारत और रामायण जैसे महाकाव्यों में भूगोल का महत्वपूर्ण विवरण है। इन ग्रंथों में भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों, उनकी संस्कृति, नगरों, वनस्पतियों, वन्य जीव-जन्तुओं, नदियों, पर्वतों और सागरों आदि का वर्णन मिलता है। रामायण में भगवान राम का वनवास और उनकी यात्रा का मार्ग, जो कई स्थानों से होकर गुजरता है, इसका एक उदाहरण है। भगवान राम की अयोध्या से लंका तक की यात्रा में विभिन्न स्थानों का वर्णन मिलता है, महाभारत में कुरुक्षेत्र का वर्णन उल्लेखनीय है, जो उस समय के भूगोल को दर्शाता है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भूगोल:-

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में भौगोलिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आर्थिक नीतियों का वर्णन किया है। राज्य की सीमाओं, जलवायु, भू-संरचना, कृषि, वनस्पतियों और खनिज संसाधनों का विश्लेषण है। कौटिल्य का ग्रंथ राज्य की आर्थिक और सैन्य नीतियों के लिए भौगोलिक जानकारी का महत्व बताता है। इसमें राज्यों के भौगोलिक संरचना और व्यापारिक मार्गों का वर्णन है।

आर्यभट और वराहमिहिर एवं भास्कराचार्य के ग्रन्थों में भूगोल:-

प्राचीन भारतीय खगोलविद और गणितज्ञ आर्यभट और वराहमिहिर ने भूगोल को विज्ञान के रूप में विकसित किया। वराहमिहिर की 'बृहत्संहिता' में पृथ्वी के आकार, समुद्रों, नदियों, पर्वतों, जलवायु आदि का वैज्ञानिक अध्ययन मिलता है। आर्यभट ने पृथ्वी के गोलाकार होने और उसकी धुरी पर घूमने की बात कही थी। आर्यभट्ट ने अपनी पुस्तक "आर्यभट्टीय" में पृथ्वी की परिधि, ग्रहों की गति आदि पर चर्चा की है। भास्कराचार्य ने "सिद्धान्त शिरोमणि" में भूगोल से संबंधित कई तथ्यों का वर्णन किया है।

संस्कृत ग्रंथों में भूगोल:-

कालिदास की 'मेघदूत', बाणभट्ट की 'कादम्बरी', और अन्य संस्कृत साहित्य में भूगोल का उल्लेख मिलता है। इन ग्रंथों में विभिन्न स्थानों, नदियों, पर्वतों, और जंगलों का वर्णन किया गया है।

वास्तु शास्त्र और अरण्यक में भूगोल:-

भारतीय वास्तु शास्त्र में भूमि, दिशा, स्थान का विशेष महत्व है। अरण्यक ग्रंथों में वनों और उनके महत्व का विस्तृत विवरण मिलता है। भारतीय ज्योतिष शास्त्र में भूगोल का एक महत्वपूर्ण स्थान है। ग्रहों, नक्षत्रों और राशियों के अध्ययन में भूगोल का महत्व स्पष्ट होता है।

हुएनसांग और फाहियान के ग्रन्थों में भूगोल:-

हुएनसांग और फाहियान दोनों चीनी यात्रियों ने भारत की यात्रा के दौरान यहां के भूगोल, समाज और संस्कृति का विस्तृत विवरण दिया। अलबरूनी एक मुस्लिम विद्वान ने भी भारत की यात्रा की और यहां के भूगोल, खगोल विज्ञान और सांस्कृतिक विविधताओं का विश्लेषण किया। इब्न बतूता ने भी अपने यात्रा वृतांत में भारत के भूगोल का वर्णन किया है।

जैन और बौद्ध साहित्य में भूगोल:-

जैन और बौद्ध साहित्य में भी भूगोल का विस्तृत वर्णन है। जैन धर्म के तीर्थंकारों के जीवन और उनकी यात्राओं का उल्लेख विभिन्न भौगोलिक स्थानों से संबंधित है। बौद्ध ग्रंथों में भी भगवान बुद्ध की यात्राओं का वर्णन मिलता है, जो भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों से जुड़े हैं।

प्राचीन भारत में भौगोलिक मानचित्रण का कार्य भी किया जाता था। भारतीय गणितज्ञों और खगोलविदों ने पृथ्वी की माप, दिशा निर्धारण, और मानचित्र बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। भारतीय ज्ञान परम्परा में तीर्थ यात्रा और धार्मिक स्थल का महत्व विशेष रूप से देखा जा सकता है। ये स्थल भौगोलिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं और सांस्कृतिक एकता के प्रतीक माने जाते हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा में भूगोल केवल भौतिक संरचना का अध्ययन नहीं था, बल्कि यह समाज, संस्कृति, धर्म और अर्थव्यवस्था के साथ गहरे रूप में जुड़ा हुआ था। इन ग्रंथों और विद्वानों के कार्यों ने न केवल भारत बल्कि विश्व के भूगोल के अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतीय भूगोल की यह समृद्ध परम्परा भौतिक संरचनाओं का विवरण देती है, इसमें मानव जीवन, संस्कृति, और ब्रह्मांडीय दृष्टिकोण का समग्र दृष्टिकोण भी समाहित है एवं इसका संबंध समाज, संस्कृति, और धार्मिक आस्थाओं से भी जुड़ा रहा है। यह परम्परा आज भी भारतीय जीवन और संस्कृति में महत्वपूर्ण है। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान परम्परा में भूगोल ने एक महत्वपूर्ण और व्यापक भूमिका निभाई है।

सन्दर्भ

1. Swami. A.C. (1976). Srimad Bhagavatam. Haktivedanta Book Trust.

2. Rigveda Definition & Facts. (2020) In Encyclopedia Britannica. Retrieved November 14, 2020,
3. Frawley, D. & Shastri, V. (2003) The Rig Veda: And the History of India. Aditya Prakashan.
4. Cultural India. (n.d.) Vedic Age-Vedic Period, Vedic Civilization, Vedic Period Civilisation.
5. Alliance of Religions and Conservation. (1986) Faiths and ecology - The Hindu Declaration on Nature - Assisi 1986.
6. Vedic perspective on environment. (2009, June 30) The Times of India
7. Tilak, B.G. (2011) The Arctic Home in the Vedas: Being Also a New Key to the Interpretation of Many Vedic Texts and Legends. Arktos, London.
8. Tiwari, R.N.J. (2012) Vedic Venues, 2012th ed. Aditya Prakashan.
9. Devamrita, S. (2002) Searching for Vedic India. The Bhaktivedanta Book Trust
10. Feuerstein, G., Kak, S. & Frawley, D. (2008) The Search of the Cradle of Civilization: New Lighton Ancient India. Motilal Banarsidass Publishe.
11. Keightley, T. (1837) Secret Societies of the Middle Ages. Charles Knight & Company

---

[i] अमरकोश

[ii] विकिपीडिया

[iii] मनु स्मृति

[iv] ऋग्वेद/7/59/12

[v] (ऋग्वेद 3/62/10

[vi] प्रज्ञा विवर्धन स्तोत्र मंत्र 5

[vii] गणपति अथर्वशीर्ष मंत्र 3

विश्व में वसुधैव कुटुंबकम का महत्व

डॉ कुंभन खंडेलवाल
प्राचार्य शासकीय महाविद्यालय कंपेल

एकता और सद्भाव को बढ़ावा देना हैं वसुधैव कुटुंबकम की अवधारण इस विचार को बढ़ावा देती हैं कि सभी जीवित प्राणी एक दूसरे से जुड़े हुए और एक दूसरे पर निर्भर हैं। यह व्यक्तियों, समुदायों और राष्ट्रों के बीच एकता और सद्भाव की भावना को बढ़ावा देता हैं। यह लोगों को समान लक्ष्यों की दिशा में मिलकर काम करने और खुद को एक बड़े वैश्विक समुदाय के हिस्से के रूप में देखने के लिए प्रोत्साहित करता हैं।

करुणा और सहानुभूति को प्रोत्साहित करता हैं वसुधैव कुटुंबकम दूसरों के साथ दया, सहानुभूति और सम्मान के साथ व्यवहार करने के महत्व पर जोर देता हैं। यह व्यक्तियों को मतभेदों से परे देखने और उनके सामने आने वाले प्रत्येक व्यक्ति में मानवता को पहचानने के लिए प्रोत्साहित करता हैं। यह करुणा और सहानुभूति की संस्कृति को बढ़ावा देता हैं। जो संघर्ष को कम करने और शांति को बढ़ावा देने में मदद कर सकता हैं।

वसुधैव कुटुंबकम में धर्म और संस्कृति का महत्व वसुधैव कुटुंबकम का दर्शन विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं और परंपराओं की समृद्धि को बढ़ावा देता हैं। यह विविधता और समावेशिता के महत्व को पहचानता हैं। और लोगों को एक-दूसरे से सीखने के लिए प्रोत्साहित करता हैं। यह रूढ़ियों को वसुधैव कुटुंबकम के प्रभाव से एक बेहतर भविष्य का निर्माण हो सकता हैं। भाई-चारा, एकता और के प्रति सम्मान को बढ़ावा देकर हम असमानताओं को कम कर सकते हैं तथा मानवता के मूल्य को समझ सकते हैं। विश्व में वसुधैव कुटुंबकम की भावना शांतिपूर्ण, सामंजस्यपूर्ण और समावेशी से भरे विश्व का निर्माण करेगी। वसुधैव कुटुंबकम का भाव हमें बेहतर विश्व के निर्माण में प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका को याद दिलाता हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा में योग

रितु शर्मा
शोधार्थी पी एच डी

परिचय - भारतीय योग परंपरा में योग के विभिन्न आयाम है, जिसमें कर्म योग, ज्ञान योग एवं भक्ति योग प्रमुख हैं। वास्तव में योग एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है, जिसमें शरीर मन एवं आत्मा को एक साथ उजागर करने का प्रयास किया जाता है । योग शब्द की निष्पत्ति 'युज' धातु से हुई है, जिसका अर्थ युक्त होना, जोड़ना या मिलाना है। अर्थात संयम उन्मुख साधना करते हुए आत्मा को परमात्मा के साथ-साथ समाधि अवस्था में सीमित ही योग है। ज्ञान तथा योग का संबंध अन्योन्याश्रित है । एक के बिना दूसरे की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ज्ञान योग के सिद्धांत के अनुसार ज्ञान योग के अनुसार आत्मा आनंद स्वरूप, ज्ञान स्वरूप, सत ,कूटस्थ ,नित्य ,शुद्ध , बुद्ध है। अपने वास्तविक स्वरूप में आत्मा ब्रह्म ही है। ज्ञान योग के अनुसार जीव ब्रह्म की एकता का ज्ञान हो जाना ही योग है। भारतीय चिंतन में अनवरत आत्मज्ञान तथा सत्य की खोज पर वैचारिक मंथन परंपरागत होता रहा है। योग विद्या के माध्यम से वास्तव में आत्म तत्व का ज्ञान तथा यथार्थ से साधक अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति करता है। योग वस्तुतः प्राचीनतम आर्ष ग्रन्थों से निकला नवनीत है। हमारे ऋषि मुनियों ने योग विद्या की विविध शाखाओं को मानव की कल्याण के लिए प्रतिपादित किया है। वेदों , उपनिषदों पुराणों दर्शन तथा टीका कालों में योग का प्रचलन कहीं ना कहीं अवश्य था।

योग का महत्व - प्राचीन काल में योग विद्या सन्यासियों या मोक्ष मार्ग के साधकों के लिए ही समझी जाती थी तथा योगाभ्यास के लिए साधक को घर को त्याग कर वन में जाकर एकांत में वास करना होता था। इसी कारण योग साधना को बहुत ही दुर्लभ माना जाता था। जिससे लोगों में यह धारणा बन गई थी कि यह योग सामाजिक व्यक्तियों के लिए नहीं है। जिसके फल स्वरुप यह योग विद्या धीरे-धीरे लुप्त होती गयी। परंतु पिछले कुछ वर्षों में बढ़ते तनाव ,चिंता, प्रतिस्पर्धा से ग्रस्त लोगों को इस योग से अनेक को लाभ प्राप्त हुए और योग विद्या एक बार पुनः समाज में लोकप्रिय होती गयी। आज भारत में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व भर में योग पर अनेक शोध कार्य किया जा रहे हैं और इससे लाभ प्राप्त हो रहे हैं। योग के इस प्रचार प्रसार में विशेष बात यह रही कि यहां यह योग जितना मोक्ष मार्ग के पथिक के लिए उपयोगी था,उतना ही साधारण मनुष्य के लिए भी महत्व रखता है। आज की आधुनिक एवं विकास के इस युग में योग अनेक क्षेत्रों में विशेष महत्व रखता है।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में- वर्तमान समय में भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में भी योग का स्वास्थ्य के क्षेत्र में उपयोग किया जा रहा है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में योगाभ्यास पर हुए अनेक शोधों से आए सकारात्मक परिणाम से इस योग विद्या को उन्हें एक नई पहचान मिल चुकी है। आज विश्व

स्वास्थ्य संगठन भी इस बात को मान चुका है ,कि वर्तमान में तेजी से फैल रहे मनोदैहिक रोगों में योग अभ्यास विशेष रूप से कारगर है । विश्व स्वास्थ्य संगठन का मानना है कि योग सुव्यवस्थित हुआ वैज्ञानिक जीवन शैली है इसे अपनाकर अनेक प्रकार के प्राण घातक रोगों से बचा जा सकता है। योग अभ्यास के अंतर्गत आने वाले षटकर्मों से व्यक्ति के शरीर में संचित विषैला पदार्थ का आसानी से निष्कासन हो जाता है। वही योगासन के अभ्यास शरीर में लचीलापन बढ़ता है वह नस नाड़ियों में रक्त का संचार सुचारू होता है। प्राणायामों की करने से व्यक्ति के शरीर में प्राणिक शक्ति की वृद्धि होती है ,साथ-साथ शरीर से पूर्ण कार्बन डाइऑक्साइड का निष्कासन होता है। इसके अतिरिक्त प्राणायाम के अभ्यास से मन में स्थिरता आती है, जिससे साधक को ध्यान करने में सहायता मिलती है। और जिससे साधक स्वस्थ मन व तन को प्राप्त कर सकता है।

रोग उपचार के क्षेत्र में – निसंदेह आज के इस प्रतिस्पर्धा व विलासिता के युग में अनेक रोगों का जन्म हुआ है जिन पर योगाभ्यास से विशेष लाभ देखने को मिला है । संभवत: रोगों पर योग के इस सकारात्मक प्रभाव के कारण ही योग को पुनः प्रचार प्रसार मिला । रोगों की चिकित्सा में योग के इस योगदान में विशेष बात यह है कि जहां एक और रोगों की एलोपैथी चिकित्सा में कई प्रकार के दुष्प्रभाव देखने को मिलते हैं , वही योग चिकित्सा से रोगी बिना किसी दुष्प्रभाव के लाभ प्राप्त करता है। आज देश ही नहीं बल्कि विदेशों में अनेकों स्वास्थ्य से संबंधित संस्थाएं योग चिकित्सा पर तरह-तरह के शोध कार्य कर रही है। आज योग द्वारा दमा, उच्च व निम्न रक्तचाप, हृदय रोग ,संधीवात , मधुमेह ,मोटापा, चिंता, अवसाद आदि रोगों का प्रभावी रूप से उपचार किया जा रहा है तथा अनेकों लोग इससे लाभान्वित हो रहे हैं। इंटरनेट पर विविध रोगों पर हो रहे शोध व अनुसंधानों का अवलोकन किया जा सकता है।

खेलकूद के क्षेत्र में – योग अभ्यास का खेल कूद के क्षेत्र में भी अपना एक विशेष महत्व है। विभिन्न प्रकार के खेलों में खिलाड़ी अपनी कुशलता , क्षमता व योग्यता आदि बढ़ाने के लिए योग अभ्यास की सहायता लेते हैं। योगाभ्यास से जहां खिलाड़ी के तनाव के स्तर में कमी आती है, वहीं दूसरी ओर इससे खिलाड़ियों की एकाग्रता वह बुद्धि तथा शारीरिक क्षमता भी बढ़ती है। क्रिकेट के खिलाड़ी बल्लेबाजी में एकाग्रता लाने शरीर में लचीलापन बढ़ाने व शरीर की क्षमता बढ़ाने के लिए रोजाना योगाभ्यास को समय देते हैं यहां तक की अब तो खिलाड़ियों के लिए सरकारी व्यवहार पर खेलकूद में योग के प्रभाव पर भी अनेक स्रोत हो चुके हैं जो की खेलकूद के क्षेत्र में योग के महत्व को सिद्ध करते हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में – शिक्षा के क्षेत्र में बच्चों पर बढ़ते तनाव को योगाभ्यास से काम किया जा रहा है। योगाभ्यास से बच्चों को शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक रूप से भी मजबूत बनाया जा रहा है । स्कूल वह महाविद्यालय में शारीरिक शिक्षा विषय के योग पढ़ाया जा रहा है । वही योग ध्यान के अभ्यास द्वारा विद्यार्थियों में बढ़ते मानसिक तनाव को कम किया जा रहा है । साथ ही साथ इस अभ्यास से विद्यार्थियों की एकाग्रता वह स्मृति शक्ति पर भी विशेष सकारात्मक प्रभाव देखे जा रहे हैं। आज कंप्यूटर, मनोविज्ञान , प्रबंधन विज्ञान कि छात्र भी योग द्वारा तनाव पर नियंत्रित करते हुए देखे जा सकते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में योग के बढ़ते प्रचलन का अन्य कारण इसका नैतिक जीवन पर सकारात्मक प्रभाव है, आजकल बच्चों में गिरते नैतिक मूल्यों को पुन स्थापित करने के लिए योग का सहारा लिया जा रहा है। योग के अंतर्गत आने वाले नियम में दूसरों के साथ हमारे व्यवहार व कर्तव्य को सिखाया जाता है, वही नियम के अंतर्गत बच्चों को स्वयं के अंदर अनुशासन स्थापित करना सिखाया जा रहा है। विश्व भर के विद्वानों ने इस बात को माना है , कि योग के अभ्यास से शारीरिक व मानसिक ही नहीं बल्कि नैतिक विकास होता है, इसी कारण आज सरकारी व गैर सरकारी स्तर पर स्कूलों में योग विषय को अनिवार्य कर दिया गया है।

पारिवारिक महत्व- व्यक्ति का परिवार समाज की एक महत्वपूर्ण इकाई होती है तथा पारिवारिक संस्था व्यक्ति के विकास के नियम होती है। योगाभ्यास से आए अनेकों सकारात्मक परिणाम से यह भी ज्ञात हुआ है कि यह विद्या व्यक्ति में पारिवारिक मूल्य मान्यताओं को भी जाग्रत करती है योग के अभ्यास वह इसके दर्शन से व्यक्ति में प्रेम आत्मीयता अपनत्व सदाचार जैसे गुणों का विकास होता है और यह गुण एक स्वस्थ परिवार की आधारशिला होते हैं।

सामाजिक महत्व- इस बात में किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि एक स्वस्थ नागरिक से स्वस्थ परिवार बनता है तथा एक स्वस्थ व संस्कारी परिवार से एक आदर्श समाज की स्थापना होती है। इसीलिए समाज उत्थान में योग अभ्यास का सीधा प्रभाव देखा जा सकता है। सामाजिक गतिविधियों व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक दोनों पक्षों को प्रभावित करती है सामान्यतः आज प्रतिस्पर्धा के इस युग में व्यक्ति विशेष पर सामाजिक गतिविधियों का नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। योग अभ्यास जैसे – कर्म योग, हठ योग, भक्ति योग ,ज्ञान योग ,अष्टांग योग आदि साधन समाज को नई रचनात्मक व शांति दायक दिशा प्रदान कर रहे हैं । कर्म योग का सिद्धांत पूर्ण

सामाजिकता का ही आधार है। "सभी सुखी हो, सभी निरोगी हो" इसी उद्देश्य के साथ योग समाज को एक नई दिशा प्रदान कर रहा है।

आर्थिक दृष्टि से महत्व – प्रत्यक्ष रूप से देखने पर योग का आर्थिक दृष्टि से महत्व गुण नजर आता हो लेकिन सुषमा रूप से देखने पर ज्ञात होता है कि मानव जीवन में आर्थिक स्तर और योग विद्या का सीधा संबंध है। शास्त्रों में वर्णित "पहला सुख निरोगी काया ,बाद में इसके धन और माया" के आधार पर योग विशेषज्ञ ने पहले धन निरोगी शरीर को माना है। एक स्वस्थ व्यक्ति जहां अपने आय के साधनों का विकास कर सकता है, वही अधिक परिश्रम से व्यक्ति अपनी प्रति व्यक्ति आय को भी बढ़ा सकता है। जबकि दूसरी तरफ शरीर में किसी प्रकार का रोग न होने कारण व्यक्ति का औषधीय उपचार पर होने वाला व्यय भी नहीं होता है। योगाभ्यास व्यक्ति में एकाग्रता की वृद्धि होने के साथ-साथ उसकी कार्य क्षमता का भी विकास होता है।

योग क्षेत्र में काम करने वाले योग प्रशिक्षक भी योग विद्या किस धन अर्जित कर रहे हैं। आज देश ही नहीं विदेशों में भी आने को योग केंद्र चल रहे हैं जिनमें शुल्क लेकर योग सिखाया जा रहा है। साथ ही साथ प्रत्येक वर्ष विदेश से सैकड़ो सैलानी भारत आकर योग प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं जिससे आर्थिक जगत को विशेष लाभ पहुंच रहा है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में महत्व- प्राचीन काल से ही योग विद्या का प्रयोग आध्यात्मिक विकास के लिए किया जा रहा है। योग का एकमात्र उद्देश्य आत्मा परमात्मा के मिलन द्वारा समाधि की अवस्था को प्राप्त करना है। इसी अर्थ को जानकर कहीं साधक योग साधना द्वारा मोक्ष मुक्ति के मार्ग को प्राप्त करते हैं। योग के अंतर्गत यम, नियम, आसन ,प्राणायाम ,प्रत्याहार, धारणा ,ध्यान , समाधि को साधक चरणबद्ध तरीके से पार करता हुआ कैवल्य को प्राप्त कर जाता है।

योग वास्तव में प्राचीन ज्ञान परंपरा की अमूल्य देन है। एक वैज्ञानिक जीवन शैली है। जिसका हमारे जीवन में प्रत्यक्ष पक्ष पर गहराई से प्रभाव पड़ता है , इसी कारण से योग विद्या सीमित तौर पर सन्यासी की यह योगियों की विद्या न रहकर पूरे समाज तथा प्रत्येक व्यक्ति के लिए आदर्श पद्धति बन चुकी है। आज योग एक सुव्यवस्थित व वैज्ञानिक जीवन शैली के रूप में प्रमाणित हो चुका है। प्रत्येक मनुष्य अपने स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए, रोगों के उपचार हेतु , अपनी कार्य क्षमता को बढ़ाने , तनाव प्रबंधन , मनोदैहिक रोगों के उपचार आदि में योग पद्धति को अपनाते हुए देखा जा रहा है। योग वर्तमान जीवन में अभिन्न अंग बन चुका है, जिसका कोई दूसरा पर्याय नहीं है , योग की लोकप्रियता और महत्व के विषय में हजारों वर्ष पूर्व ही योगशिखोपनिषद में कहा गया है –

योगात्परतरंपुण्यं योगात्परतरं शिवम ।
योगात्परतरंशक्तिं योगात्परतरं न हि।।

योग के समान कोई पुण्य नहीं,योग के समान कोई कल्याणकारी नहीं,योग के समान कोई शक्ति नहीं और योग से बढ़कर कुछ भी नहीं है।वास्तव में योग ही जीवन का सबसे बड़ा आश्रय है।

भारतीय ज्ञान परम्परा :वैश्विक अर्थव्यवस्था नई शिक्षा नीति के संदर्भ में

डॉ. कल्पना जैन
सहायक प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग
ज्ञानगंगाा कालेज ऑफ एक्सीलेंस जबलपुर (म.प्र.)
Mo-9340672256,
Email Address - kalpnajainggce2023@gmail.com

सारांशः–

वर्तमान समय में शिक्षा के क्षेत्र में बहुत काम हुआ है और हो रहा है। आज के युग में जहां अर्थव्यवस्था का वैश्वीकरण हो गया है विश्व एक बाजार बन गया है वहां यदि हमने अपनी शिक्षा व्यवस्था को मजबूत नहीं किया तो हम अपने को विश्व की विकसित अर्थव्यवस्थाओं में अग्रणी नहीं रख पाएंगे शिक्षा के बदलते आयाम में शिक्षा को तकनीकी से जोड़ा गया। आज शिक्षा पाठ्यक्रम अपने आप में एक विधा के साथ–साथ अन्य कई विषयों की विधाओं को समावेशित करता है यह विद्यार्थियों की सर्वांगीणिय विकास पर ध्यान दे रहा है।

भारत हमेशा से विद्वान एवं शिक्षार्थियों की जन्मभूमि रही है तक्षशिला, नालंदा ,विक्रमशाला जैसी विश्वविद्यालय ने दुनिया भर में विद्वानों की एक श्रृंखला खड़ी कर दी है। भारत जब स्वतंत्र हुआ तब 20 विश्वविद्यालय एवं 500 महाविद्यालय एवं दो लाख 30 हजार छात्र नामांकित थे। आजादी के बाद भारत ने प्रगति की है उच्च शिक्षा के आंकड़ों के संदर्भ के अनुसार यह संख्या बढ़कर 659 विश्वविद्यालय एवं 33023 महाविद्यालय हो गई है 2011–12 के ही आंकड़े हैं केंद्र सरकार एवं राज्य सरकार विद्यार्थियों की प्रतिभाओं को निखारने के लिए निरंतर प्रयास कर रही हैं।

प्रस्तावनाः– गुणवत्तापूर्ण शिक्षा आज एक बड़ी चुनौती बन गई है बड़ी संख्या में नेट, पीएच डी विद्यार्थी बेरोजगार घूम रहे हैं। यहां तक की उच्च शिक्षा में भी बहुत बड़ी संख्या बेरोजगार विद्यार्थियों की है। उच्च शिक्षा संस्थानों में अनुसंधान पर अपर्याप्त ध्यान दिया जाता है वहां पर्याप्त संसाधन एवं सुविधाओं के साथ छात्रों को सलाह देने के लिए गुणवत्तापूर्ण संकाय की संख्या भी सीमित है। भारत की इतनी बड़ी जनसंख्या है फिर भी यह शैक्षिक बुनियादी ढांचे को संभालने में अपर्याप्त ही रही है। आज देश में जो विशाल युवाओं की संख्या है यदि वह शिक्षित होगी और शिक्षा का डिजिटलाइजेशन होगा तो शिक्षा उपकरणों का उपयोग करके समाज एवं राष्ट्र को उन्नत बनाने की दिशा में कार्य किया जा सकेगा। इन्हीं सब मुद्दों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने 2020 में एक ऐतिहासिक कदम उठाया एनइपी 2020 इस के माध्यम से शिक्षा प्रणाली को और अधिक परिष्कृत किया गया।

उद्देश्यः– अनुसंधान का मुख्य उद्देश्य है

1. वैश्वीकरण के दौर में भारतीय शिक्षा के विकास का पता लगाना।
2. वैश्वीकरण का अध्ययन करना परंपरा और आधुनिक शिक्षा के वैश्विक और स्थानीय शिक्षा के बारे में अध्ययन करना।
3. वैश्विक संघर्षों के वास्तविक तस्वीर को दिखाना ।

अध्ययन की सीमाएं

मेरे अध्ययन का विस्तार वैश्वीकरण के दौर में भारतीय शिक्षा का विकास और शिक्षा के क्षेत्र में वैश्वीकरण का सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव सीमित रहेगा। अनुसंधान कार्य विधि यह अध्ययन पाठ के आलोचनात्म, मूल्यांकनात्मक, वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक और व्याख्यात्मक उपयोग करते हुए माध्यमिक स्तोत्रों के माध्यम से वैश्वीकरण के दौर में शिक्षा भारतीय शिक्षा का विकास और शिक्षा के क्षेत्र में वश्विकरण के नकारात्मक प्रभाव एवं सकारात्मक प्रभाव के संपूर्ण अध्ययन पर भी केंद्रित है ।

डेटा संग्रह

शोध अध्ययन के लिए द्वितीय स्रोतों से डाटा एकत्रित किया गया है जिसका विश्लेषण किया जाएगा। वैश्वीकरण शिक्षा के संदर्भ पुस्तकों सहित पुरानी एवं मूल जानकारी प्रदान करता है। माध्यमिक स्रोतों में जीवनी, लेखक के कार्यों के महत्वपूर्ण अध्ययन। शोध पत्र और शोध निबंध, शोधगंगा, व्यक्तिगत साक्षात्कार, विकिपीडिया, वीडियो और अन्य वेबसाइटे भी शामिल है

केंद्रीय मंत्रिमंडल ने 21वीं सदी के भारत की जरूरत को पूरा करने के लिए भारतीय शिक्षा प्रणाली में बदलाव हेतु जो नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को मंजूरी दी अगर उसका क्रियान्वयन सफल तरीके से होता है तो यह नई प्रणाली भारत को विश्व के अग्रणी देशों की श्रेणी में ले आएगी। नई शिक्षा नीति 2020 के तहत 3 –18 साल तक के बच्चों की शिक्षा का अधिकार कानून 2009 तक के अंतर्गत रखा गया है । 34 वर्षों पश्चात आयी इस नई शिक्षा नीति का उद्देश्य सभी छात्रों को उच्च शिक्षा प्रदान करना है। जिसका लक्ष्य 2025 तक प्राथमिक शिक्षा 3 से 6 वर्ष की आयु की सीमा को सार्वभौमिक बनाना है। स्नातक शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस थ्रयी डी, मशीन डेटा विश्लेषण जैविकीय प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों के समायोजन से अत्यधिक क्षेत्र में कुशल पेशेवर तैयार होंगे और युवाओं की रोजगार क्षमता में वृद्धि होगी।
वैश्विक शिक्षा के मामले में संयुक्त राष्ट्र की एक नई रिपोर्ट में बताया है कि अगर 97 अरब डॉलर की अतिरिक्त धनराशि नहीं उपलब्ध कराई गई तो बहुत से देश 2030 के राष्ट्रीय शैक्षिक लक्ष्य की प्राप्ति में नाकाम हो सकते हैं। इस रिपोर्ट में वित्त की तत्काल समीक्षा किए जाने का भी आवाहन किया गया है यह रिपोर्ट विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की हाल ही में होने वाली बैठकों के लिए तैयार की गई है और इसमें विकसित पश्चिमी देशों को शिक्षा क्षेत्र के लिए अतिरिक्त धनराशि की आवश्यकता होगी। इसके साथ यह रिपोर्ट धन की सबसे बड़ी समस्या सब –सहारा अफ्रीका क्षेत्र में है, जो 70 अरब डॉलर प्रति वर्ष है इस क्षेत्र में बहुत लंबी यात्रा यात्राएं करनी पड़ती हैं जिनके कारण प्राइमरी स्कूल की उम्र के लगभग 20% बच्चे और सेकेंडरी स्कूल आयु के लगभग 60% बच्चे स्कूलों में नहीं है । इस रिपोर्ट में यह भी दिखाया गया है कि अधिक अध्यापकों की जरूरत है एवं अन्य महत्वपूर्ण निष्कर्ष पर जोर दिया गया है कुछ देशों में पूर्व प्राइमरी स्तर पर अध्यापकों की संख्या वर्ष 2030 तक तीन गुनी करने की आवश्यकता होगी।

वैश्विक शिक्षा आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका

वैश्विक शिक्षा आर्थिक एवं सामाजिक विकास में एक महत्वपूर्ण योगदान देती है यह लोगों को तकनीकी ज्ञान विवेक और साहस में वृद्धि करती है जिससे आर्थिक क्रियो का विस्तार होता है। साधनों का विवेक पूर्ण उपयोग संभव बनता है और बचत का उत्पादक निवेश किया जाता है ।
G-20 शिखर सम्मेलन 2023 में भारत का वैश्विक आर्थिक प्रभाव पर चर्चा की गई जहां भारत की समग्र अर्थव्यवस्था राष्ट्रीय विकास तक ही सीमित नहीं रहकर सामूहिक, वैश्विक प्रगति के लिए एक मार्गदर्शक प्रकाशक के रूप में कार्य किया है इससे शिक्षा की भूमिका अहम रही है शिक्षा में निवेश न केवल व्यक्तिगत बल्कि सामाजिक आर्थिक विकास में भी लाभ होता है जिस देश की समग्र प्रगति सुनिश्चित होती है यह विकासशील देशों की भौतिक पूंजी निर्माण की दर में तेजी लाने एवं लोगों के जीवन स्तर को बढ़ाने में सहायक होती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय शिक्षा के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण योजनाएं प्रस्तुत करती है इस नीति के तहत विभिन्न क्षेत्रों में कई महत्वपूर्ण पहल की गई है

1. पीएम (प्रधानमंत्री स्कूल फॉर राइजिंग इंडिया)– इसके तहत कुल 6448 स्कूलों का चयन किया गया है और पहली किस्त के रूप में 6207 पीएम स्कूलों को 630.11 करोड रुपए जारी किए गए हैं।
2. निपुण भारतीरू यह पहल विद्यार्थियों के समझ और संख्यात्मकता के साथ पढ़ने में प्रवीणता प्रदान करने का लक्ष्य रखती है।
3. पीएम शिक्षा के तहत डिजिटल ऑनलाइन और शिक्षा के लिए विभिन्न उपाय उपलब्ध कराए जाते हैं ।

डिजिटल एबीसी आईडी जैसी सुविधाएं शिक्षा के क्षेत्र में योगदान करती है यह एक डिजिटल शिक्षा प्लेटफार्म है जो विभिन्न विषयों पर वीडियो लेक्चरर्स टेस्ट सीरीज और अन्य शिक्षण सामग्री प्रदान करता है इसका उद्देश्य छात्रों को विभिन्न विषयों में ज्ञान एवं कौशल विकसित करने में मदद करना है यह एक उपयोगी मित्र एप है जो छात्रों को उनकी शिक्षा की आवश्यकताओं के अनुसार विभिन्न सामग्री प्रदान करता है। इसके माध्यम से छात्र विभिन्न विषयों में अपने ज्ञान एवं कौशल को विकसित कर सकते हैं

नई वैश्विक अर्थव्यवस्था में भारत की स्थिति

भारत अब एक अधिक मुक्त अर्थव्यवस्था के रूप में उभर रहा है ।भारत ऊर्जा के मामले में ऊपर हुआ परंतु G–20 में यह अभी भी निधर्न है। भारत पूरे विश्व में उच्च विकास दर के साथ चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में उभरा है और प्रति व्यक्ति आय जैसा कि पूर्व में लिखित है कि अर्थव्यवस्था की दृष्टि से वैश्विक रैंकिंग में भी सुधार हुआ है फिर भी यह तथ्य उभर कर आता है कि उनकी प्रति व्यक्ति आय बिल्कुल निम्न है (2011 में चालू 1527 अमेरिकी डॉलर पर) इसका समाधान शायद बड़ी चुनौती है इसके बावजूद भारत के पास घरेलू एवं विदेशी दोनों प्रकार के विभिन्न घटक हैं जिनसे भविष्य के विकास की अच्छी संभावना है।

जनसंख्या– 1.2 बिलियन व्यक्तियों के साथ भारत का विश्व की जनसंख्या में लगभग छटवां स्थान है जहां जनसंख्या में वृद्धि में निरंतर कमी आई है परंतु भारत की जनसंख्या 2001 से 2011 के दौरान लगभग 180 मिलियन व्यक्तियों की वृद्धि हुई है सापेक्ष दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक तथापि भारत ऐसे दौर से गुजर रहा है जब इस निर्भरता का अनुपात वर्ष 2001 के अनुमानित 74.8 से गिरकर 2026 में कार्यशील उम्र समूह के व्यक्तियों के हिस्से में तदनुर रूपी वृद्धि के साथ 55.6 हो जाएगा श्रम के उत्पादन के प्रमुख घटक होने के साथ जनसंख्या लाभांश विकास के लिए स्पष्ट रूप से सकारात्मक है तथापि इस बात पर इंगित किया गया है की जनसंख्या में अधिकांश वृद्धि वर्तमान समय में गरीब राज्यों में होगी अतः इस लाभांश के लिए पर्याप्त मात्रा में मानव पूंजी के निर्माण की आवश्यकता होगी।

इस संबंध में भारत में मानव विकास सूचकांक एचडीआई की दृष्टि से कुछ सुधार देखा गया है यूएनडीपी का एचडीआई जिसमें अधिक आर्थिक निर्देशक और शिक्षा तथा स्वास्थ्य संकेत की दृष्टि से भारत प्रगति के साथ 1980 के 0.344 से 2011 में 0.547 की प्रगति देखी गई है भारत का रैंक 1980 के 82 से बढ़कर 2011 में 72 हो गया है 100 देश के समूह में जिनके लिए इस समय उपलब्ध है भारत के अंक में सुधार के बावजूद इसके एचडीआई रैंक में बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा है इसका संभवत कारण यह हो सकता है कि कुछ अन्य देशों ने सूचकांक में तीव्र सुधार दर्ज कराया है परंतु भारत को अपने सूचकांक में तीव्र सुधार दर्ज करना होगा अतः भारत को न केवल सापेक्ष दृष्टि से बल्कि अन्य देशों के संबंध में अपनी उपलब्धियां को बेंचमार्क किए जाने की आवश्यकता है।

विकास के संसाधन एवं पूंजी उपलब्धता

भारत का विकास के संबंध में सामान्य सरकारी व्यक्ति बाजार अर्थव्यवस्थाओं से कम से कम आधे कारक से वास्तविक रूप में काम होता है इससे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि सामान्य सरकारी राजस्व का विकास

में 17.6% का अनुपात उभरी अर्थव्यवस्थाओं के निम्नतम में से एक रहा है और विकास अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में निश्चित रूप से अत्यंत कम रहा है। अतः राजकोषीय संवेदन की आवश्यकता होने पर भी प्राथमिक संसाधन जुटाना की आवश्यकता है विकसित अर्थव्यवस्थाओं में हाल ही घटनाक्रमों से यह पता चलता है कि राजस्व आधार को बनाए रखना और सरकारी वित्त संसाधनों की मात्रा बनाए रखना कितना महत्वपूर्ण है जैसा कि भारत पर विदेशी अर्थव्यवस्था का प्रभाव अधिक होता है अतः बृहद राजस्व आधार पर आधारित इसकी राजकोषीय शक्तियां कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो जाएंगे। अधिकांश विकसित अर्थव्यवस्था है जो प्रौद्योगिकी दृष्टि से सुदृढ़ रहे हैं अब पुरानी सोसाइटियां बन गई है उन्हें विदेशों में निवेश करते और निर्माण आय पर निर्भर रहने की आवश्यकता है। जिस चरण में भारत की स्थिति है स्थाई निवेश की आवश्यकता पर जोर देने एवं सर्वेक्षण करने की आवश्यकता है। भारत को अधिक वास्तविक निवेश की आवश्यकता अपनी आपूर्ति श्रृंखला के विविधीकरण के उद्देश्य से विदेश में स्थित मित्र देशों में उत्पादन सुविधाओं की निवेश करने के लिए कुछ औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं से कुछ विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए आवश्यकता के बीच एक अंतर निहित पूरक संबंध है ।

विप्रेषण वित प्रभाव का एक महत्वपूर्ण स्रोत और विश्व बैंक अनुमान के अनुसार 2011 में विकसित देशों के विप्रेषण प्रभाव 351 मिलियन डॉलर अमेरिकी डॉलर था भारत में भी विप्रेषण प्रवाह के 58 बिलियन अमेरिकी डॉलर होने का अनुमान है वर्ष 2010 में देश में विकास का 3% विप्रेषण रहा। ऐसे उच्च अंतर प्रभाहो का एक कारण तेल की उच्च कीमत हो सकती है जिससे खाड़ी देशों और तेल के अन्य निर्यात को जहां काफी संख्या में भारतीय कामगार नियुक्त थे को सहायता मिली है वर्ष 2011 के उत्तर रात में भारतीय रुपए की अवमूल्यन में भी सहायता मिली होगी।

सारणी 1.1 विनिर्माण मूल्यवर्धित विश्व एमबीए के प्रतिशत के रूप में शीर्ष 15

देश	2000	2009
अमेरिका	25.6	18.7
चीन	6.7	18.1
जापान	18.0	10.1
जर्मनी	6.8	6.4
इटली	3.6	3.5
फ्रांस	3.3	2.8
यूके	4.0	2.4
रूस	NA	1.7
ब्राजील	1.7	2.4
कोरिया गणराज्य	2.3	2.3
स्पेन	1.7	1.9
मेक्सिको	1.9	1.6
कनाडा	2.3	2.0

भारत	1.1	2.1
इंडोनेशिया	0.8	1.6

स्त्रोतः–विश्व बैक डेटाबेस

जैसा कि सारणी क्रमांक 1.1 से स्पष्ट हो रहा है की भारत का विनिर्माण 2000–2009 में बढ़ा है पर यह अन्य देशों की तुलना में नगण्य है इससे इस दिशा में और अधिक कार्य करने की आवश्यकता है।

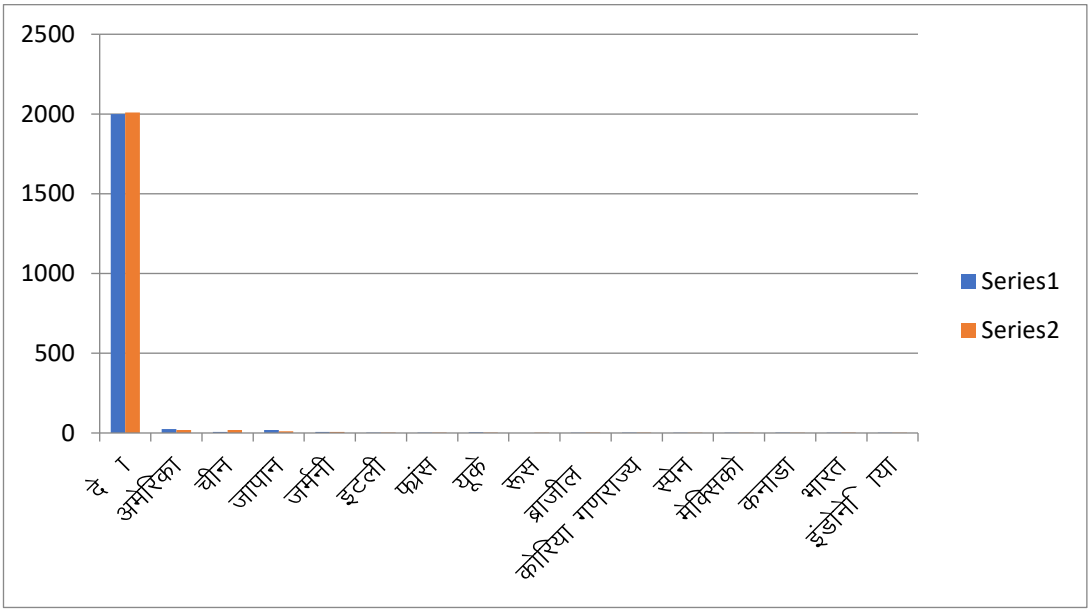

जैसा कि सारणी क्रमांक 1.1 से स्पष्ट हो रहा है की भारत का विनिर्माण 2000–2009 में बढ़ा है पर यह अन्य देशों की तुलना में नगण्य है इससे इस दिशा में और अधिक कार्य करने की आवश्यकता है।

निर्यात एवं विदेशी मांग

वैश्वीकरण की प्रक्रिया में निर्यात की बढ़ोतरी देखी गई है जो 2010 में समग्र रूप से विश्व का 27.9% हो गई है जबकि कुछ देशों में निर्यात पर कहीं अधिक निर्भरता देखी गई है तथा कथित पूर्व एशियाई चमत्कारी अर्थव्यवस्थाओं का यह तथ्य था कि निर्यात्मक निवेशपूर्ण कार्यनीति के विकास को बढ़ावा एवं विनिर्माण योग्यताओं को प्राप्त करने में सहायक रही। इस कार्यनीति के अनुकूल विनिमय दर और अपेक्षाकृत कम मजदूरी की सहायता प्राप्त हुई है जिससे प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्राप्त हुआ। माल का वैश्विक मांग विशेषकर उन्नत बाजारों में से विकास कार्य नीति की सहायता मिली परिणाम स्वरूप इस अर्थव्यवस्था की वजह से भी निर्माण में मूल श्रृंखला आगे बढ़ गई है।

निर्यात से भारत का विकास कहां तक हो सकता है विकसित अर्थव्यवस्था में मंड़ी से उनके विकास की संभावनाओं से आयात की मांग अर्थात अन्य देशों से निर्यात इस समय कुछ हद तक हल्की प्रतीत होती है दूसरी बात यह है कि कुछ देशों चीन सहित में क्षमता निर्माण अधिक हो जाने से नए देश के लिए कुछ समय के लिए रुकावट के रूप में कार्य कर सकते हैं तीसरी बात यह है कि ऊर्जा की लागत बढ़ रही है और जलवायु परिवर्तन के संबंध में चिंताएं बड़ी हैं इस संबंध में भारत के निर्यात माल एवं सेवाओं का अनुपात 1990 में 6.02% से बढ़कर 2010 में 21.5% हो गया है फिर भी विश्व निर्यात में भारत का हिस्सा केवल 1. 5% है भारत का निर्यात माल एवं सेवाओं के बीच समान रूप से संतुलित है इसके अतिरिक्त निर्यात की दिशा में परिवर्तन से यह पता चलता है कि भारत निर्यात हेतु पारंपरिक बाजारों की विभिन्न स्थलों में विविधीकरण ला रहा है अतः निर्यात की विशेषकर तीर्व अर्थव्यवस्था में बढ़ाने की गुंजाइश है जिसमें अधिकांश एशियाई और अफ्रीकी में और कुछ हद तक लैटिन अमेरिका में है वहीं कुछ परिपक्व बाजार महत्वपूर्ण हो

सकते हैं। हालांकि समूह के लिए समग्र रूप से हिस्से में गिरावट हो रही है इसके अतिरिक्त वैश्विक बाजार की उपस्थिति का मुख्य लाभ वैश्विक मानकों तक बेंचमार्क करने में समर्थ होना है अपने अधिकार का अनुसरण करना है इसके अतिरिक्त घरेलू एवं निर्यात मांग की दो शक्तियों का लाभ यह है की अर्थव्यवस्था के वैश्विक मांग में उतार–चढ़ाव के प्रति अधिक चीलापन प्रदान करता है।

सारणी 1.2 2010 में वित्तीय सेवाओं के भीर्श 10 निर्यातक और आयातक तथा उनकी हिस्सेदारी

निर्यातक		आयातक	
यूरोपियन संघ	53.0	यूरोपियन यूनियन	60.0
अमेरिका	23.6	अमेरिका	15.6
स्वीजरलैंड	6.4	भारत	6.7
हांगकांग	5.1	कनाड़ा	3.6
सिंगापुर	4.9	हांगकॉक	3.5
जापान	1.5	जपान	3.1
भारत	2.4	सिंगापुर	2.3
कनाडा	1.3	स्वीजरलैण्ड	1.7
कोरिया	1.2	ब्राजील	1.7
नार्वे	0.6	रूस	1.7
शीर्ष 10	100	सर्वाच्च	100

स्त्रोत : विश्व व्यापार संगठन

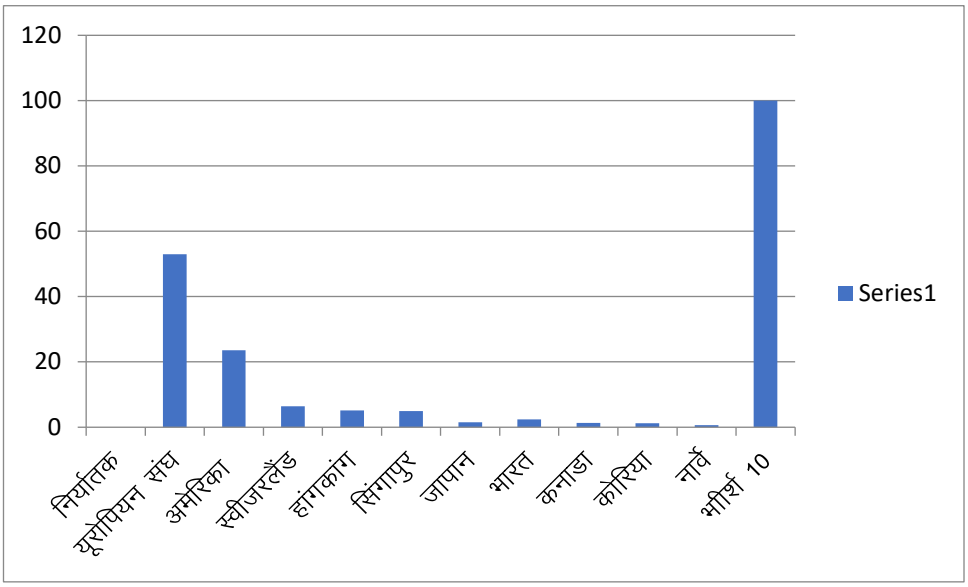

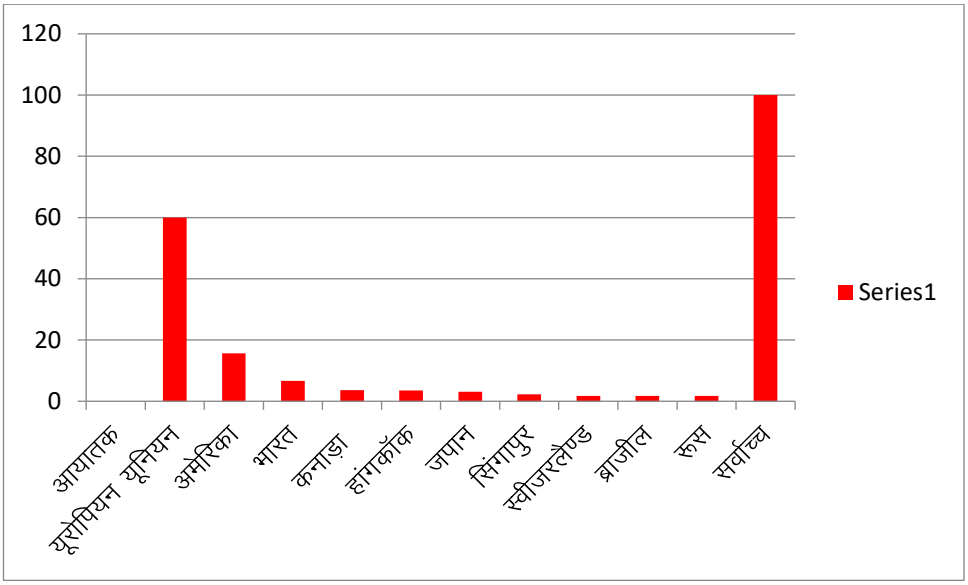

सारणी 1.2 2010 में वित्तीय सेवाओं के भीर्श 10 निर्यातक और आयातक तथा उनकी हिस्सेदारी

उपरोक्त सारणी 1.2 में 2010 में भारत ने अपने निर्यात में वृद्धि की है और इसे अधिक बढ़ाने की आवश्यकता होगी क्योंकि जहाँ यूरोपीयन संघ का निर्यात 53.0 है वहीं भारत का 2.4 है जो की कुल निर्यात की तुलना में 4.5 प्रतिशत है अतः इसमें सुधार की असीम संभावनाएँ है।

जहाँ तक आयात के आँकड़ो की बात है भारत की स्थिति काफी मजबूत है। यूरोपीयन यूनियन के आयात की तुलना में भारत केवल 11.16 प्रतिशत ही आयात कर रहा है जो हमारी आत्मनिर्भरता को परिलक्षित करता है।

ऐसा नहीं कि केवल आईटी सेक्टर ही आगे बढ़ा है तेल और गैस के उद्योगों ने भी तकनीकी प्रगति में उल्लेखनिए कार्य किया है ऊर्जा उत्पादन की लागत में भारी गिरावट आई है इसने कई देशों (यहां तक संयुक्त राज्य अमेरिका सहित) में ऊर्जा मैट्रिक्स को बदल दिया है और फिर इस उद्योग का नवीनीकरण ऊर्जा संसाधनों की तीव्र वृद्धि से असाधारण प्रतिस्पर्धा का सामना कर रहा है ।खुदरा उद्योगों के तेजी से हो रहे बदलाव के बारे में देखा जाए तो जहां स्टोर्स और शॉपिंग मॉल की जगह अब तेजी से वेबसाइटें ले रही

है। उद्योग कोई भी हो ,नवाचार के समर्थन ने बाजारों को नया कर दिया है हालांकि यह विघटनकारी परिवर्तन उत्पादकता में स्पष्ट वृद्धि के बिना हुआ है। यह तेज नवाचार और तकनीकी परिवर्तन के पिछले दौर से बहुत अलग है इस तनाव के लिए प्रति स्पष्टीकरण है और अनुसंधान में भी इस सबके अनुभवजन्य प्रासंगिक कारकों की पहचान नहीं की जा रहीं है।

सकल घरेलू उत्पाद और उत्पादकता के स्तर को कम करके आँका गया है हालांकि अब तक सापेक्षिक उत्पादकता की वृद्धि में गिरावट के लिए किसी स्पष्टीकरण की ओर इशारा नहीं हुआ है स्थानांतरण मूल्य निर्धारण और वैश्वीकरण से जुड़े अन्य कारकों के प्रभाव के कारण गलत मैप के बारे में भी तर्क है अन्य लोग सकल घरेलू उत्पाद को शामिल नहीं की गई आर्थिक गतिविधियों की बढ़ती हिस्सेदारी की ओर इशारा करते हैं गैर बाजार गतिविधियां होंगे जिनका कभी भी सकल घरेलू उत्पाद का हिस्सा बनने का इरादा नहीं था ।

निष्कर्ष

शिक्षा जीवन विकास की नीव है एक शिक्षित व्यक्ति ही राष्ट्र को नई दिशा प्रदान करता है जहाँ तक आर्थिक विकास का सवाल शिक्षा व्यक्ति को न केवल आत्मनिर्भर बनाती है सामाजिक एवं आर्थिक रूप से मजबूती प्रदान करती है। शिक्षा समाज की पूँजी एवं राष्ट्र की धरोहर है आर्थिक विकास का चक्र सूदृण तभी हो सकता है जब शिक्षा को नवाचार, प्राद्योगिकी, कौशल एवं विकास आत्मनिर्भरता से जोड़ा जाएगा और नई शिक्षा नीति में ये सभी बिन्दु गर्भित है अतः इस बात पर विश्वास किया जा सकता है कि भारत भविष्य में एक पूर्णविकसित अर्थव्यवस्था के रूप में विश्व का नैतृत्व करेगा। भारत जो भी करेगा विश्व उससे प्रभावित होगा इसलिए आवश्यक है कि वह कानूनों और विचारों से विश्व के समक्ष अपना तालमेल स्थापित करे। निः संदेह भारत को आंतरिक चुनौतियों का सामाना करना होगा गरीबी, बेरोजगारी जैसी पुरानी समस्याएँ इसके सामाजिक एवं भौतिक अवसर रचना विकास की चुनौती होगी। भारत भविष्य का विश्व गुरू बनकर सामने आएगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. हन्दुस्तान, जनवाणी, विभिन्न तिथियों से सम्बन्धित।
2. तथ्य भारती, आर्थिक मासिकी, अंक–19, फरवरी 2012 क
3. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
4. https://en.wikipedia.org/wiki/National_Education_Policy_2020 3. Puri, Natasha (30 August 2019).
5. A Review of the National Education Policy of the Government of India - The Need for Data and Dynamism in the 21st Century. SSRN
6. Vedhathiri, Thanikachalam (January 2020), "Critical Assessment of Draft Indian National Education Policy 2019 with Respect to National Institutes of Technical Teachers Training and Research", Journal of Engineering Education, 33 5. https://mgmu.ac.in/wp-
7. content/uploads/NEP-Indias-New-Education-Policy_2020-final.pdf
8. http://s3-ap-southeast-amazonaws.com/ijmer/pdf/volume10/volume10-issue2(5)/33.pdf .
9. Kumar, K. (2005). Quality of Education at the Beginning of the 21st Century: Lessons from India. Indian Educational Review.
10. Draft National Education Policy 2019,
11. 21https://innovate.mygov.in/wpcontent/uploads/2019/06/mygov15596510111.pdf
12. National Education Policy 2020.
13. https://www.mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/nep/ NEP_Final_English.pdf referred on 10/08/20

शिव और शक्ति: द्वन्द नहीं, पूरक

डॉ आशा अग्रवाल

प्राध्यापक हिंदी

श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय इंदौर

भूमिका

हिंदू धर्म के अद्वितीय दर्शन में शिव और शक्ति की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह केवल एक धार्मिक प्रतीक नहीं, बल्कि ब्रह्मांड के गहरे रहस्यों और जीवन के संतुलन का प्रतीक है। शिव और शक्ति का संबंध द्वन्द का नहीं, बल्कि पूरकता का है, जो एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं।

शिव: चेतना के प्रतीक

शिव को 'महादेव' कहा जाता है, जो संपूर्ण ब्रह्मांड की चेतना का प्रतीक हैं। वे स्थिरता, ध्यान, और मौन के प्रतीक हैं। शिव का निराकार और निर्विकार स्वरूप दर्शाता है कि वे सभी गतिविधियों और बदलावों के केंद्र में एक स्थिर बिंदु हैं। उनका यह स्थिर स्वरूप जीवन के स्थायित्व और मौन का प्रतिनिधित्व करता है।

शक्ति: ऊर्जा की मूर्ति

शक्ति, जिन्हें पार्वती, दुर्गा, या काली के नाम से भी जाना जाता है, शिव की ऊर्जा और सक्रिय शक्ति का प्रतीक हैं। शक्ति ब्रह्मांड की समस्त गतिविधियों, परिवर्तन, और सृजन की आधारशिला हैं। वे प्रेम, सृजनात्मकता, और संरक्षण की देवी हैं। शक्ति के बिना शिव केवल शून्य हैं, जैसे ऊर्जा के बिना कोई भी स्रोत निष्क्रिय होता है।

पूरकता का सिद्धांत

शिव और शक्ति का संबंध यिन और यांग के समान है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं और उनका अस्तित्व एक-दूसरे पर निर्भर करता है। शिव बिना शक्ति निष्क्रिय हैं, और शक्ति बिना शिव अराजक हैं। यह सिद्धांत दर्शाता है कि स्थिरता और गत्यात्मकता, मौन और ध्वनि, पुरुष और स्त्री के गुण एक-दूसरे को संतुलित करते हैं।

शिव को 'शव' कहा जाता है जब वे शक्ति के बिना होते हैं। शक्ति के बिना शिव में कोई जीवन नहीं है, कोई ऊर्जा नहीं है। शक्ति के माध्यम से ही शिव सृजनात्मक, संरक्षक और संहारक रूप में प्रकट होते हैं। इसी प्रकार, शक्ति का अस्तित्व भी शिव की स्थिरता पर आधारित है। शक्ति की

ऊर्जा का उपयोग तभी संभव है जब उसे नियंत्रित और संतुलित करने वाला शिव का स्थिर स्वरूप मौजूद हो।

सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व

शिव और शक्ति की पूरकता का विचार केवल दार्शनिक ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। तंत्र शास्त्र में, शिव और शक्ति का मिलन साधना का उच्चतम लक्ष्य माना गया है। यह मिलन मानव जीवन के सभी पहलुओं को संतुलित करने का प्रतीक है, जो आध्यात्मिक, मानसिक और भौतिक जीवन को समृद्ध करता है।

शिव और शक्ति की पूजा एक साथ की जाती है, जैसे शिवलिंग और योनिपीठ। यह पूजा पद्धति इस तथ्य को दर्शाती है कि दोनों का मिलन ही संपूर्णता का प्रतीक है। शिव की आराधना के बिना शक्ति की पूजा अधूरी है, और शक्ति के बिना शिव की उपासना अधूरी है।

आज के प्रसंग में उदाहरण

आज के आधुनिक समाज में, शिव और शक्ति की पूरकता का सिद्धांत कई क्षेत्रों में देखा जा सकता है। जैसे, एक सफल परिवार में पति और पत्नी का सहयोग आवश्यक होता है। किसी भी संस्था में नेतृत्व और कार्यबल का संतुलन होना अनिवार्य है। शिव की स्थिरता प्रबंधन में अनुशासन और दीर्घकालिक दृष्टिकोण का प्रतीक है, जबकि शक्ति की गत्यात्मकता नवाचार और ऊर्जा का प्रतिनिधित्व करती है।

निष्कर्ष

शिव और शक्ति का संबंध केवल द्वैत का नहीं, बल्कि अद्वैत का है। वे एक-दूसरे के बिना अपूर्ण हैं और एक-दूसरे के साथ मिलकर ही संपूर्णता प्राप्त करते हैं। यह पूरकता जीवन के हर क्षेत्र में लागू होती है, चाहे वह व्यक्तिगत विकास हो, सामाजिक संरचना हो या आध्यात्मिक उन्नति। शिव और शक्ति की यह अद्वितीय जोड़ी हमें यह सिखाती है कि सच्ची शक्ति और स्थिरता एक-दूसरे के पूरक हैं, और उनका संतुलन ही जीवन की संपूर्णता का रहस्य है।

सन्दर्भ

1.डॉ. राधाकृष्णन, “हिंदू धर्म का दर्शन”, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999।

2.स्वामी विवेकानंद, “योग और तंत्र”, अद्वैत आश्रम, 1965।

3.डॉ. देवदत्त पटनायक, “मिथ्याओं का संसार”, पेंगुइन इंडिया, 2010।

भारतोय परम्परागत शिक्षा व्यवस्था में विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षा की सुनीश्चितता का अध्ययन

डॉ. त्रिपत कौर चावला

प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग

श्री अटल बिहारी वाजपेयो कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय इन्दौर

डां रितेश महाडिक अतिथि विद्वान समाजशास्त्र शा. कन्या महाविद्यालय शाजापुर म.प्र.

परिचय :-

वैदिक काल हो या पोराणिक समय, भारत में शिक्षा का समृद्ध इतिहास रहा है। उस समय सम्पूर्ण भारत में गुरूकुल व्यवस्था के माध्यम से शिक्षा का प्रसार किया जाता रहा है, जहा पर विद्यार्थीयों को उनके गुण और रूचि के अनुसार शिक्षा दि जाती थी, जैसे रामचरितमानस के अनुसार श्री राम अपने सभी भाईयों के साथ गुरुकुल शिक्षा ग्रहण करने गये थे पर सभी ने अलग-अलग विद्याओं में शिक्षा प्राप्त की वहीं द्वापर युग में श्री कृष्ण भी सांदीपनी आर्षम में 64 कलाओं का ज्ञान प्राप्त किये थे। उसी समय पांचो पाण्डव भी एक साथ एक ही गुरूकुल में विद्याग्रहण करने गए पर सभी अपनी रुचि व गुणो के अनुसार ही शिक्षा प्राप्त कर लोटे थे। इन्हीं सब प्राचिन्तम इतिहास को आधार बना कर भारत में नई शिक्षा नीति का निर्माण किया गया है। जो विद्यार्थी केंद्रित शिक्षा को सुनीश्चित करने में सहायक है।

विद्यार्थी केंद्रित शिक्षा एक कठोर, एक निश्चित आकार या सभी प्रकार से फिट दृष्टिकोण नहीं है, बल्कि एक लचीला ढांचा है, जिसे प्रत्येक छात्र की अनूठी जरूरतों को पूरा करने के लिए अनुकूलित किया जा सकता है।

आज की तेज-तर्रार, निरंतर विकसित होती दुनिया में, छात्रों को सफल होने के लिए अकादमिक ज्ञान से ज्यादा की जरूरत होती है। उन्हें आलोचनात्मक विचारक, समस्या समाधानकर्ता और जीवन पर्यन्त सीखने वाले की जरूरत है। विद्यार्थी केंद्रित शिक्षा छात्रों को उनके सीखने का स्वामित्व लेने, उनकी सहज जिज्ञासा को बढ़ावा देने और वास्तविक दुनिया

की समस्याओं को हल करने के लिए उन्हें चुनौती देने के लिए प्रोत्साहित करके उन्हे महत्वपूर्ण कौशल से युक्त करती है।

इसके अलावा, विद्यार्थी केंद्रित शिक्षा विद्यार्थियों की विविधता को पहचानती है, प्रत्येक छात्र की अनूठी जरूरतों, रुचियों और क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए वर्तमान में भारतीय परम्परा से युक्त शिक्षा नीति को बनाया गया है।

विद्यार्थी केंद्रित शिक्षा को दर्शाने वाले बिन्दु :-

परियोजना आधारित शिक्षण

छात्र वास्तविक दुनिया की परियोजनाओं में संलग्न होते हैं, जो उनकी रुचियों के अनुरूप होती है. और गहन समझ विकसित होती है जिससे आवश्यक कौशल का विकास होता है।

अंतःविषयक शिक्षण

शिक्षण व्यक्तिगत विषयों की सीमाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि यह परस्पर जुडा हुआ है, तथा वास्तविक दुनिया की जटिलता को प्रतिबिंबित करता है।

व्यक्तिगत निर्देश

शिक्षक प्रत्येक छात्र की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपनी शिक्षण विधियों और सामग्रियों को अनुकूलित करते हैं, जिससे उन्हें अपनी गति से प्रगति करने की अनुमति मिलती है।

लचीलापन

विद्यार्थी को अपनी रुचियों का पता लगाने, अपनी गति से सीखने और अपने सीखने के अनुभव को आकार देने की स्वतंत्रता होती है।

सहयोगात्मक वातावरण

विद्यार्थी परियोजना में एक साथ काम करते हैं, जिससे प्रभावी ढंग से संवाद

करना, समस्याओं को सहयोगात्मक ढंग से सुलझाना और विभिन्न दृष्टिकोणों का सम्मान करना सीखते हैं

सक्रिय शिक्षण

विद्यार्थी अपने शिक्षण में सक्रिय सहभागीता करते हुए, सूचना के निष्क्रिय प्राप्तकर्ता नहीं बल्कि सतत मूल्यांकन और फीडबैक मूल्यांकन एक बार की घटना नहीं है अपितु एक सतत प्रक्रिया है। छात्रों को उनकी ताकत और सुधार के क्षेत्रों को समझाने में मदद करने के लिए नियमित रूप से फीडबैक मिलता है।

विद्यार्थी-केंद्रित शिक्षा में विकल्प की शक्ति

विद्यार्थी-केंद्रित शिक्षा का एक प्रमुख घटक विकल्प है। विद्यार्थियो को शैक्षिक विकल्पों की एक श्रृंखला प्रदान करके, वे अपनी अनूठी सीखने की जरूरतों और शैलियों के लिए एकदम सही विकल्प पा सकते हैं। यह न केवल विद्यार्थियो की सहभागिता को बढ़ाता है और सीखने के परिणामों को बेहतर बनाता है, बल्कि एक अधिक संतोषजनक शैक्षिक अनुभव भी बनाता है।

विद्यार्थी-केंद्रित शिक्षा में विकल्पो का चुनाव कई रूप ले सकते हैं, जैसे कि क्या सीखना है और कैसे सीखना है, और कब और कहाँ सीखना है, यह तय करना। छात्रों को ये निर्णय लेने की शक्ति देकर, विद्यार्थी-केंद्रित शिक्षा स्वामित्व और जिम्मेदारी की भावना को बढ़ावा देती है, जिससे विद्यार्थियो को अपने सीखने में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रेरित किया जाता है।

सारांश :-

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 जिसमें वर्ष 1992 में संसोधन किया गया, जो कि तब तक भी विद्यार्थी को केवल नौकरी करने के लिए ही प्रेरित करती रही है। ऐसी शिक्षा का एक मात्र उददेश्य विद्यार्थी में प्रतिस्पर्धा के लिए तैयारी करना ही होता था, इन्हीं सब तथ्यो को देखते हुए ही सन् 2020 में के कस्तूरीरंगन की अध्ययक्षता वाली समिति की रिपोर्ट पर आधारित नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को लागू किया गया है। जिसमें विद्यार्थी केवल सैद्धांतिक विषयों का ही अध्ययन नहीं कर रहे है, बल्कि वे विकल्प युक्त विषयों का चयन कर अपना स्नातक पूर्ण कर चुके है, जो विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था के द्वारा ही संभव हो पाया है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के दस्तावेज

2. इन्टरनेट

3. समाचार पत्र-पत्रिक

प्राचीन भारतीय साहित्य में पर्यावरणीय नैतिकता एवं सुरक्षा की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता।

प्रो0 (डा.) प्रेम प्रकाश राजपूत, विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग, तिलक महाविद्यालय, औरैया (उत्तर प्रदेश)
प्रो0 डी0एन0 बाजपेयी, पूर्व प्राचार्य एवं विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग, तिलक महाविद्यालय, औरैया (उत्तर प्रदेश)

साराँश :–

प्राचीन भारतीय साहित्यों में वेद, उपनिषद, पुराण, स्मृतियाँ एवं महाकाव्य प्रमुख हैं जिसमें मानव जीवन की गुणवत्ता में अभिवृद्धि एवं नैतिक मूल्यों की स्थापना से सम्बन्धित विभिन्न दिशा निर्देश अभिलिखित हैं जो मुख्यतः नैतिक उपदेशों से युक्त हैं। वैदिककाल के ऋषि मुनियों ने अरण्यों के प्राकृतिक पर्यावरण का सृष्टि जीवन से जुड़े मूलभूत प्रश्नों की उच्चस्तरीय व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं जिनको पूजा उपासना एवं यज्ञों के माध्यम से जनमानस तक पहुंचाया। वैदिक जीवन शैली में यज्ञों का विशेष महत्व है। इससे प्राणवायु शुद्ध और पवित्र हो जाती है। इसका जिनको संयोगवश स्पर्श का अहसास हो जाता है, वह प्रत्येक वस्तु शुद्ध और पवित्र हो जाती है। इस प्रकार प्राकृतिक पर्यावरण शुद्ध, स्वच्छ और पवित्र हो जाता है। प्राचीन साहित्य में जो अरण्यों के वर्जन हैं उन सभी स्थलों पर ऋषि मुनियों ने ज्ञान प्राप्त किया था। इनमें ही वनवास काल के भी समय बिताये गये। अरण्य भी विभिन्न वृक्षों के सम्मिलित रूप हैं। वृक्षों को भी विभिन्न वेदों में पर्यावरण संवर्धन के महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। यदि प्राचीन भारतीय समृद्ध साहित्य के आलोक में पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान के मूलभूत नैतिक मूल्यों, सुरक्षा एवं प्राकृतिक उपहारों के महत्व को आत्मसात कर बेहतर भविष्य की कल्पना साकार सिद्ध कर सकते हैं। आधुनिक मानव ने लालसावश प्राकृतिक मर्यादाओं का आक्रमण, पर्यावरण को प्रदूषित एवं पारिस्थितिकी को असुंतलित किया है। इन समस्याओं का समाधान प्राचीन साहित्य में वर्णित है। केवल उन बताए मार्ग पर चलना होगा।

मूलशब्द– नैतिकता ;डवतंसपजलद्ध मूल्य ;टंसनमेद्ध अरण्य ;थ्वतमेजद्ध पर्यावरण ;म्दअपतवदउमदजद्ध प्राचीन ;।दबपमदजद्ध साहित्य ;स्पजमतंजनतमद्ध

वास्तव में पर्यावरण उन समस्त शक्तियों, परिस्थितियों एवं वस्तुओं का योग है जो मानव को परावृत्त करती हैं एवं प्रकृति के अनुसार विभिन्न क्रिया–कलापों को अनुशासित करती है।

ईशोपनिषद के शब्दों में–

"ईशावस्य मिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।"

अर्थात ईश्वर की सृष्टि में जो कुछ भी है, वह सब पर्यावरण है। वैदिक काल का प्रारम्भ आज से लगभग छः हजार वर्ष पूर्व माना जाता है,[1] तभी से ही भारत की

उत्तरोत्तर बढ़ती जनसंख्या के कारण प्राकृतिक पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव दृष्टव्य हैं क्योंकि बढ़ती जनसंख्या एवं पर्यावरण घनिष्ठतः अन्तर्सम्बंधित है।[2] कई विद्वानों ने भी पर्यावरण अवनयन के कारणों में मुख्यतः जनसंख्या वृद्धि को माना है। सत्य है कि बढ़ती जनसंख्या की बढ़ती और असीमित आवश्यकताओं ने प्राकृतिक संसाधनों का अधिकाधिक दोहन किया है। फलस्वरुप अनेक पर्यावरणीय समस्याएं उभर कर उपस्थित हुई हैं। यह भी सर्वविदित है कि अनादिकाल से मानव प्राकृतिक पर्यावरण की गोद में अपना अमूल्य जीवन व्यतीत करता आ रहा है लेकिन इसके पीछे वैदिक काल के ऋषि मुनियों की शिक्षा–दीक्षा भी पर्यावरणीय नैतिकता और सुरक्षा के प्रति प्रभावी रुप से संचालित होती थीं। कोग्सिवर्ग में जन्में इमेनुअल कान्ट (1724–1804) दार्शनिक, विचारक, एवं महान जर्मन भूगोलवेत्ता था जिसने सर्वप्रथम नैतिक भूगोल (डवतंस ैबपमदबम) के अध्ययन पर बल देते हुए एक भूगोल की शाखा का निर्माण किया, जिसमें बताया कि मनुष्य के विभिन्न रीति–रिवाजों, चरित्रों, वातावरण एवं उसकी सभ्यताओं का अध्ययन किया जाता है।[3–4] भविष्य में आगामी भूगोलवेत्ताओं ने नैतिक भूगोल की शाखा पर विशेष ध्यान नहीं दिया, जिससे इसका विकास नहीं हो पाया जबकि वर्तमान समय में इसकी महती आवश्यकता अनुभव की जा रही है क्योंकि मनुष्य के नैतिक गुणों में अनेक प्रकार की कमियाँ दृष्टिगत होती हैं। इससे न केवल पर्यावरणीय समस्याओं का जन्म हुआ है बल्कि समूचा मानव समुदाय, इनके आचरणों से व्यथित एवं प्रभावित है। नैतिक मूल्यों के अवनयन के फलस्वरुप मानव समुदाय में अनेक मूल्य रहित प्रवृत्तियों ने जन्म लिया है जो निम्नवत हैं–

– मानवीय नैतिक मूल्यों में ह्रास
– उपभोक्तावादी दृष्टिकोण।
– प्राकृतिक संसाधानों का अनियंत्रित दोहनकर्ता।
– संवेदनहीनता।
– सामाजिक चेतना में कमी।
– शीघ्र धनवान होने की लालसा।
– नगरीय संस्कृति का विकास।
– राष्ट्र के प्रति सम्मानों में कमी।
– अपराधिक प्रवृत्ति।
– सामाजिक विघटन में भागीदारी।
– राजनैतिक दृष्टिकोण का पनपना।
– मानव–जीवन का गुणवत्ताहीन होना।
– जीवों के प्रति समादर का अभाव।
– आचरणहीनता का पनपना।

इस प्रकार पर्यावरण में जो ह्रास हो रहा है उसके पीछे नैतिक मूल्यों में निरन्तर गिरावट दृष्टिगोचर हो रही है जबकि प्राचीन भारतीय साहित्य में इसका निदान विस्तारपूर्वक मिलता है। इसका अध्ययन नैतिक भूगोल की शाखा में किया जा सकता था। आज इसकी महत्ता अनुभव की जा रही है।

देश के प्राचीन साहित्य जैसे– वैदिक ग्रथों, वेदों, पुराणों, उपनिषदों, स्मृतियों, महाकाव्यों, ऐतिहासिक पुस्तकों, धार्मिक साहित्य आदि में मानव आचार–विचार तथा नैतिक उपदेशों से भरा हुआ है। यदि मनुष्य इनको सजगता के साथ व्यवहार में लाये तो निश्चित ही मानव जीवन के साथ–साथ प्राकृतिक पर्यावरण में सुख शान्ति व्याप्त हो जायेगी। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के निर्माता अरण्य अर्थात वन प्रदेश रहे हैं।[5] यदि हम सभी स्वस्थ मनः स्थिति से सोचें तो निश्कर्ष निकलता है कि वनों के प्राकृतिक पर्यावरण की गोद में ही उत्कृष्ट वैदिक संस्कृति का पोषण हुआ माना जा सकता है। अरण्य संस्कृति के पूजन से ही पर्यावरण स्वच्छ और सुरक्षित रहता था। वैदिक युग में आमजन मानस के द्वारा सूर्य, जल, वायु, पृथ्वी, पशु–पक्षी एवं विभिन्न वनस्पतियों तथा उनके अवयवों की दैवी शक्तियों के रूप में उपासना एवं प्रार्थनाएं की जाती रही हैं। इससे वास्तव में लोगों में अरण्यों के प्रति सहानुभूति के कारण उनका संरक्षण और सुरक्षा भी होती रही है जिससे पर्यावरण को प्रदूषण मुक्ति रखने की शिक्षा प्राप्त होती थी।

यह स्पष्ट है कि वैदिक काल ही अरण्य संस्कृति का स्वर्ण काल था जिसमें वैदिक ऋषि मुनियों ने पर्यावरण की महत्ता को जनसाधारण तक पूजा–उपासना एवं विभिन्न प्रकार के यज्ञों के आयोजनों द्वारा पहुँचाया। उस समय सभी प्रकृति पूजक थे। वैदिक युग में आर्यों के द्वारा पर्यावरण के सभी महत्वपूर्ण अवयवों अर्थात– पृथ्वी, जल, वायु, सूर्य, जीवों, एवं वनस्पतियों की पूजा–उपासना एवं प्रार्थनाएं की गयी जिससे वे मनुष्यों के प्रति अनुकूल और शान्त बने रहें तथा शुद्ध और सन्तुलित रूप में उपलब्धता भी सुनिश्चित रहे।

पर्यावरण के लिये 'वन' सबसे महत्वपूर्ण अंग है और वन वृक्षों से बने हैं। महाभारत आदि पर्व में कहा गया है–

"एक वृक्षोहि यो ग्रामे भवेत् पर्णफलान्वितः
चैत्यो भवति निर्ज्ञातिरचनीय सुपूजितः।"

अर्थात यदि गाँव में एक पेड़, फूल और फलों से भरा पूरा हो तो वह स्थान हर प्रकार से अर्चनीय और पूज्य है। वराह पुराण में वृक्षारोपण पर एक विवरण प्राप्त हुआ है– "वह व्यक्ति जो एक पीपल, एक नीम, एक बरगद, दस फूलों वाले पेड़ या लताएं, दो अनार, दो संतरे और पाँच आम के वृक्ष लगाता है, वह कभी नरक में नहीं जाता। "वृक्षारोपण को धार्मिक भावना से जोड़कर तत्कालीन वेदों, पुराणों तथा धर्म ग्रथों ने भी मनुश्यों को पेड़ लगाने हेतु प्रेरित किया था। वैदिक युगीन आर्य सावधानी के साथ वृक्षों की शाखाओं को स्व उपयोग हेतु काटते थे, जिससे वृक्ष पुनः नवीन शाखाओं के साथ बढ़ता रहे और मानव भी निरन्तर उन्नति करता रहे।

वनस्पते शतवल्शों विरोह सहस्रवल्शा वि वयं रूहेम।
यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभागाय ।। (ऋग्वेद 3.8.11)

ऋग्वेद में कहा गया है कि वृक्षों को शाखा रहित नहीं होना चाहिये। उस काल खण्ड में आर्यों की नैतिकता का इससे उपयुक्त उदाहरण नहीं हो सकता। यजुर्वेद के शान्ति पाठ में तीनों लोकों, जल, वनस्पति, औषधि एवं सभी देवों के लिये शान्ति हेतु प्रार्थना की गई है। यह प्रार्थना सम्पूर्ण भूमण्डल में शान्ति बनाए रखने के

सन्देश के साथ–साथ पर्यावरण के प्रति, प्रदूषित न करने की प्रेरणा एवं शिक्षा भी प्रदान करता है।

ऊँ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः।
पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिशेशधयः शान्तिः।
वनस्पतिः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः,
सर्वं शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्तिरेधि।।
ऊँ शान्तिः, ऊँ शान्तिः, ऊँ शान्तिः, ।।

पर्यावरण की दृष्टि से वैदिक काल में ऋषि युनि सूर्य को प्रसन्न करने हेतु ऋचाओं के माध्यम से जनसामान्य को अवगत कराते थे कि प्राणी तथा वनस्पतियों पर पड़नें वाले प्रभाव असीमित हैं क्योंकि सूर्य की उष्णता से ही बादल बनते हैं जो वृष्टि के रूप में अन्न उत्पादन, औषधियों एवं वनस्पतियों को पुष्ट करते हैं। वेदों में अग्नि (सूर्य) की प्रार्थना ऊर्जा स्त्रोत के रूप में की गई है। ऋग्वेद की निम्न ऋचा प्रकृति में संव्याप्त ऊर्जा चक्र के रूप में की गई है।

त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो अद्रह, आसादेवा हविदनहुतम।
त्वया मतसिः स्वदन्त आसुतिं, त्वं गर्भो वीरूथां जज्ञिषे शुचिः।।

यजुर्वेद में इस बात का उल्लेख है कि ऋषियों ने मृदा (पृथ्वी) को उर्वर बनाने एवं उसको हिंसित (प्रदूषित) न करने की भी शिक्षा दी।

' पृथ्वी रूढ़ पृथ्वी मा हिंसा। '

इसके अतिरिक्त पृथ्वी सूक्ति में पृथ्वी को माता कहकर पूज्य भाव भी व्यक्त किया गया है –

" माता भूमिः पुगोअहं पृथिव्याः। "

वैदिक काल के ऋषियों ने वृक्षों, वनस्पतियों एवं औषधियों के महत्व को समझते हुए इनकी रक्षा पर्यावरण को समृद्ध रखने हेतु की थी (अर्थात वृक्ष को कुल्हाड़ी से मत काटो।)

यजुर्वेद में औषधियों को परम हितैषी बताकर फलने–फूलने की कामना की गयी है, जिससे सभी प्राणी निरोग हों।

'मनहवीर्नः सन्त्कोषक्षी' (वनस्पतियाँ मधुमय (रसयुक्त) हों।)

मनुष्य को जीवित रहने हेतु वृक्ष, वनस्पतियाँ शुद्ध प्राणवायु प्रदान करती हैं और अरोग्यता हेतु प्राणदायिनी जड़ी–बूटियाँ भी उपलब्ध कराती है। ये नष्ट न हों इसलिये पूर्व से इन्हें पूज्य मानकर देवी–देवताओं के वास स्थल के रूप में वैदिक युग से ही स्वीकारा गया है।

ऋग्वेद में वृक्ष के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है –

मूलतो ब्रह्मरूपायः मध्यतो विष्णुरूपायः।
अग्रतः शिव रूपायः वृक्ष राजाय ते नमः।।

(वृक्ष के मूल में ब्रह्मा, तने में विष्णु एवं पेड़ के अग्रभाग में शिव जी का निवास है, उस वृक्षराज को मैं नमन करता हूँ।) लेकिन प्रभावशाली लोग लालचवश उन्ही वृक्षों का संहार करने पर तुला है।

दुर्गा सप्तशती में वर्जित निम्न श्लोक में प्रकृति प्रदत्त पर्यावरण का उल्लेख है –

यावद भूमण्डलम् धत्ते सशैलवन काननम् ।
तावत्तिष्ठति मेन्दियां सन्ततिः पुत्र पौत्रिकी ।।

(जब तक पृथ्वी वृक्षों और पहाड़ों से युक्त जंगलों से समृद्धि रहेगी तब तक यह मानव की संतानों का पालन–पोषण करती रहेगी।) लेकिन वर्तमान में बढ़ती जनसंख्या के फलस्वरूप वनों का सफाया कर नित्य नये अधिवासों का निर्माण हो रहा है। पेड़–पौधों एवं वनस्पतियों की क्षति से पर्यावरण असन्तुलित हो रहा है। प्राचीन भारतीय साहित्य में वर्जित वृक्षों के विविध उपयोगों की जो जानकारी दी गयी है वह वर्तमान में भी प्रासंगिक है। इनकी विशेषताओं के फलस्वरूप ही आज भी पूजा अर्चना की जाती है। जैसे– वट वृक्ष की पूजा इसलिये की जाती है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश निवास करते हैं तथा साक्षात शिव के रूप में स्वीकारा गया है। इसे देव वृक्ष की संज्ञा भी दी गई है। पीपल वृक्ष में देवत्य की प्रतिष्ठा स्वीकार करते हुए श्रीमद्भगवत गीता में स्वंय भगवान श्रीकृष्ण ने भी कहा है –

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणम देवर्षीणाम च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानाम कपिलो मुनिः।।

सनातन धर्म में हवन पूजा में समिधाओं के रूप में आम, पीपल, बरगद, शमी, पाकड़ की सूखी लकड़ियाँ तथा फलों में बेल, धतूरा, नींबू आदि के फलो का आहुतियों के रूप में उपयोग किया जाता है। शास्त्रों में वरूण देवता का वास खजूर के वृक्ष में तथा जम्बू वृक्ष में बादलों का आवाहन करने की शक्ति मानी गई है।[6] भगवान शिव को प्रसन्न करने हेतु बेल, बेलपत्री एवं धतूरा का अर्पण करना परम आवश्यक माना गया है। यदि वृक्षों की महत्ता पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट है कि भगवान श्रीकृष्ण की लीलाएं अधिकता कदम्ब के वृक्षों एवं वन क्षेत्रों से सम्बंधित हैं। रामायण काल में वनों का वहुत महत्व था। भगवान राम एंव पाण्डवों ने भी अपना वनवास काल अरण्य क्षेत्रों में ही व्यतीत किया। भगवान बुद्ध को भी ज्ञान की प्राप्ति अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष के नीचे प्राप्त हुई थी। वृक्षों और वनों के प्रति असीम प्रेम के कारण ही श्रीराम ने दण्डक वन, श्रीकृष्ण ने वृन्दावन, एवं इन्द्र ने नन्दन वन का निर्माण कराया था। यही नहीं प्राचीन काल में वर्ण व्यवस्थानुसार व्यक्तियों के ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं सन्यास आश्रम वनों एवं वृक्षों के सानिध्य में व्यतीत होते थे। मत्स्यपुराण में इसके महत्व को पहचानते हुए कहा गया कि दस कुओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है।

प्राचीन साहित्य में प्रत्येक वृक्ष को किसी न किसी रूप में देवी देवता का प्रतीक मानकर पूजा–उपासना की जाती थी। हरिवंश पुराण के अनुसान पर्यावरण एवं स्वास्थ्य के लिये कोविदार वृक्ष को लाभकारी माना गया है। जिसका वर्णन वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड में मिलता है। राम मंदिर के उद्घाटन के समय ध्वज पर कोविदार वृक्ष का छायांकन लिया गया है। नीम वृक्ष में माँ दुर्गा का स्वरूप, आंवला में भगवान विष्णू, केला में विष्णु एवं लक्ष्मी, तुलसी में माता लक्ष्मी, शमी को भगवान राम, गणेश और शनि देव, हर सिंगार (पारिजात) हनुमान जी। इसके अतिरिक्त आम, अनार, अशोक, नारियल, चन्दन आदि का धार्मिक कार्यों में विशेष महत्व है। इसके

अतिरिक्त अनेक वनस्पतियाँ औषधियों के रूप में मानव की सेवा कर रही हैं। धरातल पर आज भी कई ऐसे वृक्ष हैं जैसे अण्डमान निकोवार में केलेमस वृक्ष है जिसका पानी स्वास्थ वर्धक है। प्राचीन काल से लेकर आज तक किसी न किसी रूप में वृक्ष, मानव के हितैषी रहे हैं तथा मनुष्य द्वारा भी पूज्य हैं। इसी से इनका अस्तित्व बना हुआ है। फिर भी कुछ मानव, दानव के रूप में वृक्ष संहार हेतु जन्में हैं जिन्हें मनुस्मृति में वृक्ष संहारक को पापी घोशित किया गया है। वस्तुतः जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त वृक्ष हमारे लिये उपयोगी हैं।[7] भूमि की उर्वरा शक्ति के संरक्षण हेतु भू–भूस्खलन एवं बाढ़ नियंत्रण में भी वन सहायक होते है। जैव जगत के मध्य आवशयक संतुलन बनाये रखने में वृक्ष काटने के बारे तथा कार्बन डाई आक्साइड को निश्चित अनुपात में रखते हैं। वेदों में वृक्ष के बारे में कहा गया है कि जिस वृक्ष पर पक्षियों के घोसले हों, मंदिरों एवं श्माशान भूमि पर लगे वृक्षों को नहीं काटना चाहिये।

उद्यान–देवालय– पितृवन–क्लीकमार्ग चितिजातः
बब्जोर्ध्व – शुष्क – कण्टकवल्लो वृन्दारक युक्ताश्च।।
बहुविहगालय कोटरपवनानवाणीडिताश्य ये तरवः
ये च स्युः स्त्रीसंज्ञा न ते शुभाः कर्तनीयाः।।

यदि किसी विशोश कारण से वृक्ष को काटना भी पड़े तो वृक्ष एवं उस पर निवास करने वाले पक्षियों से क्षमा मांगनी चाहिये तथा पक्षियों से अन्यत्र जाने का आग्रह करना चाहिये। मनुस्मृति में ऐसी भी मान्यता व्यक्त की गई है कि मरने के बाद मनुष्य वृक्ष जाति में जन्म लेता है।[8] वृक्षों से इतर यजुर्वेद में मानव को इस बात का निर्देश दिया गया कि पशुओं के साथ हिसंक व्यवहार न करें, उन्हे निर्भय होकर घूमने दें।

' अभयं नः पशुभ्यः। '

सामवेद में जल को ऊर्जा का अजस्र स्रोत, रोगनाशक, तथा पुष्टकारक बताया गया है। ऋषि जल द्वारा कल्याणकारी होने की प्रार्थना करते हैं।

' रौ सोराभि स्वन्तु नः। '

यजुर्वेद में अन्तरिक्ष (वायुमण्डल) के पवित्र रहने की कामना का विचार मिलता है।

'अन्तरिक्ष शिव तुभ्यम्।'

यजुर्वेद में ऋषि द्वारा वासुदेव से प्रार्थना करने का वृतान्त मिलता है कि हे! पवन देव, वायु शुद्ध (प्रदूषण मुक्त) होकर बहे।

'रा नौ वातः पवताम्।'

सामवेद में वायु (शुद्ध) को रोगनाशक औषधि बताया गया है।

'वात आ वातु भेषजम्।'

वैदिक ऋषियों ने यज्ञ के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण तथा पारिस्थितिकी संतुलन को बनाये रखने का प्रयत्न किया। यज्ञाग्नि आकाश से वर्शणशील मेघ के दोहन से जलों की वर्षा करता है। जब यज्ञाग्नि में सुखद जल उत्पन्न होते हैं, तब औषधियाँ उत्पन्न होती है। यज्ञाग्नि में औशधियों का हवन होने से अन्न का अधिक उत्पादन होता है। अतः यज्ञाग्नि को "अन्नावृधं" कहा गया है।[9] ऋग्वेद अनेक सूक्तों से ज्ञात होता है कि वनस्पतियों के संवर्धन के लिये आर्य नित्य यज्ञाग्नि करते थे। इस प्रकार

पारिस्थितिकी संतुलन में अरण्यों का महत्वपूर्ण योगदान होता है, अरण्य से किसी को कोई नुकसान नहीं होता। अतः ऋग्वैदिक आर्य भी अरण्य को कोई नुकसान नहीं पहुँचाते थे और उसके साथ मित्रता स्थापित करके रहते थे इस प्रकार वैदिक साहित्य में वर्णित अरण्यों और मानव अर्न्तसम्बंध वैश्विक कल्याण और ब्रह्माण्ड के संरक्षण की भावना से आवद्ध था। प्राचीन काल में यज्ञ तथा अग्निहोम के द्वारा विभिन्न लाभों का वर्णन बताया गया है कि वायुमण्डल की वायु शुद्ध होती हैं। साथ ही साथ सूक्ष्म जीव–जन्तु, विषाणु आदि नष्ट हो जाते हैं। यज्ञ के द्वारा सामाजिक पर्यावरण पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है लोगों में सामाजिक जागरूता, चेतना, उदारता एवं राष्ट्र प्रेम की भावना विकसित होती है।

पर्यावरण सुरक्षा हेतु कूर्मपुराण का यह लोक शिक्षा देता है –

फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यकशतम्।
गुल्म वल्ली लतानां तु पुष्पितानाम् च वीरूधाम्।।

प्राचीन साहित्यों में पर्यावरण रक्षा सुरक्षा, संरक्षा हेतु सभी उपाय किये गये थे जो मानव हेतु आज भी प्रासंगिक हैं, किन्तु औद्योगिक और वैज्ञानिक युग में पर्यावरण निरन्तर प्रदूषित होता जा रहा है जिसका प्रमुख कारण मनुष्यों मे नैतिकता की कमी आकलित की गई है। वास्तव में प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि पर्यावरण के प्रति सजमता के साथ निर्धारित कानून एवं उत्पादित सामग्री की पैकिंग निर्धारित मानकों के अनुसार होनी चाहिये। साथ ही साथ जनसंख्या स्थिरीकरण पर केन्द्र तथा राज्य सरकारों को सोच–समझकर नीति बनाकर कठोर कानूनी प्रावधानों के अनुसार लागू करना अति आवश्यक है क्योंकि बढ़ती मानव जनसंख्या की बढ़ती आवश्यकताएं पर्यावरण के सन्तुलन का बिगाड़ रही हैं। प्रचीन साहित्य मे पर्यावरण के समृद्धिशाली रहने या बनाने हेतु जो उपाय सुझाये या बनाये गये थे, वे वर्तमान समय में भी प्रासंगिकता को संजोए हुए हैं क्योंकि मनुश्य किसी न किसी प्रकार से प्रकृति पूजक है। यदि समय से सचेत होकर प्राचीन युगीन ऋषि मुनियों के दृष्टांत या वृतान्त को आत्मसात कर पर्यावरण उपायों को अविलम्ब अपनाने में अग्रणी की भूमिका निभाये, तभी हम सभी शुद्ध, स्वच्छ और प्रदूशण मुक्त वातावरण में साँस ले सकेंगे।

वर्तमान समय में इस बात की आवश्यकता है कि वैश्विक परिस्थितियों के परिपेक्ष्य में मानव प्राणी को प्रकृति प्रदत्त अमूल्य संसाधनों का समुचित सदुपयोग, सुरक्षा व संरक्षण हेतु गहन मानसिक चिन्तन, प्राचीन युगीन साहित्य में वर्णित नैतिक उपदेशों को अपनाकर पर्यावरणीय समस्याओं को दूर किया जा सकता है।

सन्दर्भ :–

1. राव, वी. पी., 1994 भारत की भू–ऐतिहासिक विरासत और आर्य, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, अंक 30, संख्या 1–2, गोरखपुर पृष्ठ–79.
2. राजपूत, पी. पी., 2010, पर्यावरण पर जनसंख्या वृद्धि एवं घनत्व के प्रभाव (भारतीय संदर्भ में) पृष्ठ 368, सम्पादित पुस्तक– डा0 धीरेन्द्र सिंह यादव, नई सह स्त्राब्दी का पर्यावरण भाग–1 में, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली.
3. श्रीवास्तव, वी. के., 2001, भौगोलिक चिन्तन के आधार, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, पृष्ठ 106.

4. कौशिक, एस. डी., 2001, भौगोलिक विचार धारा एवं विधितंत्र, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ, पृष्ठ 179
5. पाण्डेय, वी. सी., 1995, पर्यावरणीय अध्ययन, किताब घर, कानपुर पृष्ठ–131.
6. राठौर, जे. एस., 1992, भारतीय संस्कृति में वृक्ष, कुरूक्षेत्र, नई दिल्ली, 30 जून, पृष्ठ–25.
7. बाजपेयी, डी. एन., 2003 विज्ञान सम्मत वैदिक परम्पराएं, पथ प्रदर्शक स्मारिका, औरैया (उत्तर प्रदेश) पृष्ठ–24.
8. गौतम, अलका, 1993, भारत की प्राकृतिक वनस्पतिः अमरकोष– एक अध्ययन, द ज्योग्राफिकल आब्जर्वर, मेरठ, वर्श–29, पृष्ठ–51.
9. सिंघवी, नन्दिता, 2011, ऋग्वेद में मानव पारिस्थितिकी और वनस्पति जगत, वेद और विज्ञान, दया पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृष्ठ– 127–130

————————

डी0एन0बाजपेयी
मो0नं0 6396784673 / 9412320830

भारतीय ज्ञान परंपरा मे पर्यावरण संरक्षण

(भारतीय दृष्टिकोण)

- डॉ. सुनीता मालवीय

प्राध्यापक इतिहास, श्री अटल बिहारी वाजपेई

शासकीय *महाविद्यालय इंदौर (मध्यप्रदेश)*

भारतवर्ष निसंदेह भौगोलिक इकाई है और ये स्पष्ट परिचिह्नित सीमाएं उसे सारे संसार से निरूपित करती है। भारतवर्ष की विशालता का एक परिणाम प्राकृतिक भूगोल और सामाजिक संस्कृति के क्षेत्रों में भी उसकी विविधता है जिसके कारण भारत को उचित रूप से ही संसार का संक्षिप्त प्रतिरूप कहा जाता है। प्रकृति ने ही भारत को प्राकृतिक दृष्टि से आत्मनिर्भर और स्वतंत्र होने की अद्भुत योग्यता प्रदान की है। जीवन व पर्यावरण अटूट संबंध है पर्यावरण को भारतीय ग्रंथो मे प्राचीन काल से ही विशेष महत्व दिया है। पर्यावरण पर्वत,चट्टान,नदी,वायु,जलवायु एवं निजी तत्वों से मिलकर बना है।

ऋग्वेद १/१६४/३३ में वर्णित है-

धौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुमें माता पृथिवी महीयम्।

अर्थात् धाव (आकाश) मेरे पिता हैं ,बन्धु वातावरण मेरी नाभि है और यह महाम पृथ्वी मेरी माता है।

ऋग्वेद के पृथ्वी सूक्त में आकाश को पिता एवं धरती को माता मानकर उससे अन्न और यश देने की कामना की गयी है।

इसी प्रकार ऋग्वेद के १०/१८६/३ में कहा है-

नू चिन्नू वायोरमृतं वि दस्येत।

अर्थात् ऋग्वेद में वायु प्रदूषण को रोकने के लिए कहा है कि वायु में अमृत अर्थात् आक्सीजन (OXYGEN) है, उसे नष्ट न होने दें। अर्थात् ऐसा कोई कार्य न करें जिससे वायु में आक्सीजन की कमी हो। यजुर्वेद में पर्यावरण की परिभाषा इस प्रकार दी गई है- **"परितः आवृणोतित पर्यावरणम्"** जो चारों ओर से आवृत करता है वही पर्यावरण है।

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः ।

यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ।।

- **अथर्ववेद ८.२.२५**

अर्थात् जहाँ पर्यावरण शुद्ध रहता है, वहाँ मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सभी सुखपूर्वक जीवित रहते है। मंत्र में पर्यावरण के लिए परिधि शब्द और पूर्ण शुद्धि के लिए ब्रह्म शब्द हैं।

अथर्ववेद में भूमि सूक्त (१२/१/३०) में वर्णित है कि- "शुद्धा व आपस्तन्वे क्षरन्तु" अर्थात् हमारे शरीर में शुद्ध जल प्रवाहित होता रहे। हमारे प्राचीन संस्कृत साहित्य में एक कहावत प्रसिद्ध है कि- "प्रक्षालानादि पडस्य दूरादस्पर्शनं वरम्।" अर्थात् पैर को कीचड़ में सानकर फिर से धोने से अच्छा है कि पैर में कीचड़ लगने ही न दिया जाए। यह वाक्य इस बात की ओर संकेत करता है कि हमारे प्राचीन ऋषि मुनि किस तरह से पर्यावरण के प्रति सजग थे। वैदिककालीन ने धुलोक (आकाश या अन्तरिक्ष) से लेकर व्यक्ति तक समस्त परिवेश के लिए प्रार्थना की है। शुक्ल यजुर्वेद में ऋषि द्वारा की गई प्रार्थना है-द्यौ शान्तिरन्तरिक्षः। इस प्रकार पर्यावरण का कोई ऐसा पक्ष नही हैं जिसे वेदों में वर्णित न किया गया हो।

यत्ते भूमे विखनामि, क्षिप्रं तदपि रोहतु ।

मा ते मर्म विमृग्वरि, मा ते हृदयमर्पिपम् ।।

- **अथर्ववेद १२.१.३५**

अर्थात् हम पृथिवी के जिस भाग को खोदते हैं, उसे फिर पूरा करें। किसी भी अवस्था में पृथिवी के हृदय और मर्मस्थलों को क्षति न पहुँचावें। इसका अभिप्राय यह है कि हम पृथिवी से रत्न, कोयला, गैस, पेट्रोल आदि जो भी पदार्थ निकालते है, उससे रिक्त हुए स्थान को फिरू पूर्ण करें

अन्यथा भू-संतुलन बिगड़ता है और भूकम्प, भूभाग का दब जाना, जलादि के स्रोतों का सूख जाना आदि संकट उत्पन्न होते है। इस मंत्र को पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने विश्वप्रदूषण निवारण संमेलन में उद्धृत किया था।

भारतीय परम्परा में जल को देवता मानते हुए नदियों को जीवनदायिनी माना गया है। जल प्रदूषण को रोकने सम्बन्धित मनुस्मृति के इस श्लोक में कहा गया है-

"नात्सु मूत्रं पुरीषं वाष्टोवनं समुरसृजेत ।

अमेध्यलिप्त भव्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा" ।।

अर्थात् जल में मल-मूल, थूक अथवा दूषित पदार्थ, रक्त या विष का विर्सजन न करें। हमारी नदियों के बारे में कहा गया है कि गंगा के दर्शन मात्र से ही मुक्ति मिल जाती है-'गंगे, तव दर्शनात मुक्तिः'। हमारे द्वारा मनाये जाने वाले समस्त त्यौहारों, रीति-रिवाजों परम्पराओं में जल संरक्षण की अवधारणा छिपी हुई है।भारतीय संस्कृति में वृक्षों को भी देवता माना गया है

ओषधयो वै पशुपतिः ।

- शतपथ ब्राह्मण ६.१.३.१२

शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वृक्ष-वनस्पति (ओषधियाँ) पशुपति अर्थात् शिव के रूप है। यजुर्वेद के रुद्राध्याय (अध्याय १६) में शिव को वृक्ष, वनस्पति, वन, ओषधि, लता-गुल्म और कृषि एवं क्षेत्र (खेत आदि) का स्वामी बताया गया है। भगवान् शिव का शिवत्व यही है कि वे विष को पीते हैं और अमृत प्रदान करते हैं। वृक्ष-वनस्पति शिव के रूप हैं। ये कार्बन डाइ-आक्साइड (CO_2) रूपी विष को पीते हैं और आक्सीजन (O_2) रूपी अमृत (प्राणवायु) को छोड़ते हैं। यह इनका शिवरूप है। शिव का दूसरा रूप रुद्र है। यह संसार का नाशक है। यदि वृक्षों को काटा जाता है और प्रदूषण का नियन्त्रण नहीं होता है तो विश्व का संहार या विनाश अवश्यंभावी है। यह है शिव का रुद्रत्व या रौद्र रूप ।

इसी प्रकार

मा काकम्वीरम् उद्धृहो वनस्पतिम् अशस्तीर्वि हि नीनशः ।

-ऋगवेद ६.४८.१७

ऋग्वेद में कहा गया है कि वृक्ष प्रदूषण को नष्ट करते हैं, अतः उन्हें कटना नही चाहिए और वृक्षों को काटने की बात सोचना भी नही चाहिए ।

'भामिनी विलास' में कहा गया है कि-

धत्ते भरं कुसुमपत्रफला वली नां धर्मव्यथां।

वहाति शीत भवा रुजश्रृ।।

यो देहमर्ममति चान्यसुखस्य हेतोस्तस्यै।

वादाव्यगुरवे तस्ये नमोस्तु ।।

अर्थात् जो वृक्ष फूल, पत्ते एवं फलों के बोझ को उठाए हुए धूप की गर्मी एवं शीत की पीड़ा को बर्दाश्त करता है एवं दूसरों के सुख के लिए अपना शरीर अर्पित कर देता है। उस वन्दनीय श्रेष्ठ वृक्ष को नमस्कार है। मत्स्यपुराण में कहा गया है-

दशकूप समावापी दशवापी समोह्रदः ।

दशह्रदः समः पुत्रो, दश पुत्रो समोवृक्ष ।।

अर्थात् दस कुओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब है, दस तालाब के बराबर एक पुत्र है एवं दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष है।

पर्यावरण संरक्षण एवं पारिस्थितिकीय सन्तुलन की बात हमारे प्राचीन भारतीय साहित्य में कूट-कूट कर भरी पड़ी है। इसलिए प्रकृति के सभी अंगों (तत्वों) में किसी न किसी देवी-देवता का अंश मानकर उसकी पूजा और संरक्षण हेतु विधान बना दिया गया। यही भावना पशु-पक्षियों पर भी लागू होती है। यही कारण है कि पशु-पक्षियों की भी पूजा का विधान बनाया गया। गाय, बैल, बाघ, शेर, चीता, हाथी, चूहा, गरुण, सर्प, हंस, उल्लू आदि छोटे-बड़े सभी हिंसक एवं अहिंसक जीव-जन्तुओं का सम्बन्ध देवी देवताओं से कर या उन्हें उनके वाहन के रूप

में जोड़कर उनकी सुरक्षा एवं संरक्षण की मान्यता हमारी भारतीय संस्कृति में रही।निःसंदेह प्राचीन ऋषि मुनियों की धारणा मानव हित में रही और उनकी यही धारणा हमारी भारतीय संस्कृति की द्योतक है और हमारी भारतीय संस्कृति में पग-पग पर परिलक्षित होती है। वैदिक मन्त्रों में उल्लेख है-

ॐ पूर्णमद ! पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुच्यतो ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवग्वशिष्यते । ।

अर्थात् मनुष्य अपनी इच्छाओं को वश में रखकर प्रकृति से उतना ही स्वीकार करें कि उसकी पूर्णता को क्षति न पहुँचे। यदि हम प्रकृति के प्रति संवेदनशील नहीं बनेंगे। हमारी संस्कृति का विनाश निश्चित है।

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है भारतीय ग्रंथो में यत्र - तत्र सृष्टि संरचना को समझाने का प्रयत्न किया गया है, सृष्टि के नैसर्गिक सौन्दर्य को बारंबार वर्णित किया है। भारतीय ग्रंथ निरंतर हमें पर्यावरण के प्रति सतर्क एवं सावधान करते हैं। भारतीय ग्रंथो में जहां एक ओर वृक्ष तथा वनस्पतियों के संरक्षण और उनकी पूजा की बात कहकर वृक्षों के महत्व को समझाया गया है वही दूसरी ओर विपरीत आचरण करने वालों को सही मार्ग पर चलने के लिए सावधान किया गया है।हमें प्रकृति के साथ तादात्मय स्थापित करना चाहिए। उसके प्राकृत स्वरूप को नष्ट न करके उसका समुचित संरक्षण करना चाहिए। भारतीय ग्रंथो में प्रकृति के स्वरूप, पर्यावरण संरचना और उसके स्वरूप के संबंध में विस्तृत विधान मिलता है। यदि मानव उक्त विधान का परिपालन करे और जो निषेधात्मक पक्ष है उनका उल्लंघन न करे तो मानव कल्याण और मानवहित के लिए उपयोगी होगा। वायु, जल, भूमि, आकाश, अन्न आदि पर्यावरण के सभी पदार्थों की शुद्धि के लिए भारतीय ग्रंथ हमें जागरूक करते हैं।पर्यावरण की शुद्धि के लिए भारतीय ग्रंथो में वनस्पति उगाना, अग्निहोत्र करना, अग्नि, सूर्य एवं औषधियों का उपयोग करना आदि उपाय सुझाते हैं। यदि उसके साथ सामंजस्य तथा सहयोग का व्यवहार किया गया तो अनन्त काल तक अपने दुग्ध रूपी सम्पदाओं से हमारा पालन-पोषण करेगी। भौतिकतावादी युग में हमें भारतीय ग्रंथो में बताए मार्ग पर चलना चाहिए। आज जरूरत पर्यावरण संरक्षण के प्रति समस्त

मानव समुदाय को सचेत और जागरूक बनाए जाने तथा भारतीय ग्रंथो में उल्लिखित विचारों से प्रेरणा प्राप्त करने की है।